पतिव्रता

सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला के पातिव्रतपूर्ण पवित्र जीवनचरितों का संग्रह

श्रीयोगेन्द्रनाथ वसु-लिखित बँगला-पुस्तक का

हिन्दी-अनुवाद

—:o:—

अनुवादक

श्रीजनार्दन झा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२५

चतुर्थ बार] [मूल्य १)
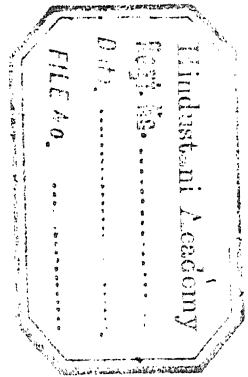
पतिव्रता

पहला आख्यान

सती

हरिद्वार में जिस जगह गङ्गा हिमालय से प्रकट हो पृथ्वी पर आई हैं, उसके सामने की भूमि को कनखल प्रदेश कहते हैं। दक्ष-प्रजापति उसी कनखल प्रदेश के राजा थे। राजा दक्ष बड़े प्रतापी थे। उनके जैसा ऐश्वर्यशाली और पराक्रमी राजा उस समय दूसरा न था। इतनी अतुल सम्पत्ति के स्वामी होकर भी वे बड़े तपस्वी थे। उन्होंने कितने यज्ञ और कितने दान किये थे। कितने अच्छे अच्छे व्रतों का अनुष्ठान किया था, उनकी संख्या नहीं। इस कारण सब लोग कहा करते थे कि—"धर्म और कर्म में राजा दक्ष की बराबरी करनेवाला कोई नहीं है।"

दक्ष की राजधानी कनखल शोभा में इन्द्र की अमरावती को भी जीते हुए थी। कई हज़ार वर्ष बीतने पर, अब भी कनखल की प्राकृतिक शोभा में कुछ अन्तर नहीं पड़ा है। इसके समीप ही पर्वतराज हिमालय के असंख्य उच्चातिउच्च; बर्फ़ से ढँके शिखर निश्चल मेघमाला की भाँति खड़े हैं। इस प्रदेश के भीतर

से होकर गङ्गा का प्रवाह साँप की भाँति कुटिल गति से घूमता फिरता बड़े तीव्र वेग से नीचे की ओर बह रहा है। कनखल में गङ्गा की क्या ही विलक्षण शोभा है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। गङ्गा का जल इतना स्वच्छ है कि उसके तलस्थित छोटी छोटी मछलियाँ तक देख पडती हैं। कहीं पारे सा सफ़ेद, कहीं आकाश सा नीला जल देखते ही मन में शान्ति छा जाती है और ताप का नाश होता है। बड़े बड़े महात्मा, ऋषि, मुनिगण क्यों गङ्गा की महिमा से इतने मुग्ध थे, जो लोग यह जानना चाहते हों वे एक बार हरिद्वार और कनखल प्रदेश की गङ्गा का दर्शन करें।

गङ्गा का स्रोत जो कनखल के एक तरफ़ से होकर बह रहा है, उसका नाम नीलधारा है। महाराज दक्ष का मणि-मण्डित राजभवन इसी नीलधारा के किनारे शोभायमान था। बरसात के मौसम में नदी का प्रवाह प्रासाद के पद को पखारता हुआ बह रहा था और प्रासाद के ऊपर रहनेवाले उसकी अविरत कलकल ध्वनि को सुनते सुनते सुखपूर्वक सो जाते थे।

राजा दक्ष के बहुतेरी कन्यायें थीं। सरोवर जैसे फूले हुए कमलों से और आकाशमण्डल जैसे चमकदार तारागणों से सुशोभित होता है, राजा दक्ष का घर भी वैसे ही राजकुमारियों से शोभायमान हो रहा था। कन्याओं की मोहिनी मूर्त्ति देख कर राजा और रानी के हृदय आनन्द से पुलकित होते थे।

राजकुमारियाँ प्रति दिन नीलधारा में स्नान करने आतीं और गङ्गा के निर्मल जल में भलीभाँति नहाती थीं। कभी गङ्गा के किनारे की बालू पर इधर-उधर दौड़तीं और कभी जल के भीतर धस पड़ती थीं। इस प्रकार जलक्रीड़ा करके उजले, पीले,

नीले और लाल रङ्ग के पत्थर के छोटे छोटे टुकड़ों को बटोर कर घर ले जाती थीं। यह देख राजा-रानी दोनों हँसते और बेटियों से कहते थेः—

"हमारे घर में ढेर के ढेर मणि मोती पड़े हैं तुम लोग इन पत्थरों को लेकर क्या करोगी?"

राजकुमारियाँ कुछ न बोलतीं, हँस कर चुप हो रहती थीं। वे हीरे-मोतियों को फेंक कर उन्हीं पत्थरों से अपने खेलने के घर को सजाती थीं। राजकुमारियों की बाल्यावस्था बीत चली, क्रमशः वे सब बड़ी हुईं। यह देख दक्ष प्रजापति ने बड़ी धूम-धाम के साथ उन सब कन्याओं का व्याह कर दिया। एक से एक सुन्दर और गुणवान् जमाता पाकर राजा और रानी के आनन्द की सीमा न रही। विवाह होने के पीछे एक एक कर सभी राजकन्यायें ससुराल जाकर सुखपूर्वक रहने लगीं।

दक्ष की केवल एक कन्या कुमारी बच रही, जिसका नाम सती था। सती सबसे छोटी होने के कारण माँ-बाप की बड़ी दुलारी थी। उस पर माँ-बाप बहुत स्नेह रखते थे।

राजा-रानी ने मन में सोचा था, "सती जब बड़ी होगी, तब सब कन्याओं की अपेक्षा विशेष समारोह के साथ सुन्दर सुयोग्य वर से उसे व्याह देंगे।"

सती के रूप-गुण की वर्णना कहाँ तक की जाय? यद्यपि राजकन्यायें सभी अनुपम सुन्दरी थीं, किन्तु सती के साथ किसी के रूप की तुलना न थी। वह सभी में परम सुन्दरी थी। सती का रूप उसके शरीर की कान्ति या उसके आँख, वदन, नाक आदि के गठन में न था। सती का रूप था उसके पवित्र

भाव में, उसकी दिव्य ज्योति में । जो कोई उसे देखता, उसकी टकटकी बँध जाती थी । उसे यही जान पड़ता था कि साक्षात् देवी उसके सामने खड़ी हैं। साधु-संन्यासी कुमारिका सती को देख कर जगदम्बा के रूप का ध्यान करते थे और भक्तिभाव से उसे प्रणाम करते थे ।

सती का स्वभाव भी अन्य राजकुमारियों से विलक्षण था । और राजकुमारियाँ, भूषण, वसन और शृङ्गार के पीछे दिन रात व्यग्र रहती थीं, किन्तु सती का ध्यान इन उपभोग्य वस्तुओं की ओर न था । राजकन्याओं में कोई सतरङ्गा कपड़ा, कोई कमल-पत्ती रङ्ग का, कोई नील रङ्ग का वस्त्र पहनना, पसन्द करती थीं, किन्तु सती गेरुवा रङ्ग का कपड़ा बहुत चाह से पहनती थी। और राजकन्याओं के कण्ठ में सोहती थी मोती की माला और हाथ में सोहता था हीरकजटित सोने का कङ्गना । किन्तु सती के कण्ठ में स्फटिक की माला, और हाथ में रुद्राक्ष का वलय सुशोभित था । और राजकुमारियाँ देह में लगाती थीं चन्दन, कस्तूरी, केसर आदि सुगन्धित द्रव्य, किन्तु सती के ललाट और बाहों में शोभा पाता था पिता के यज्ञ-कुण्ड का भस्म । और राजकन्यायें दासियों के द्वारा बड़े यत्न से चोटी गुँधवाती थीं । किन्तु सती के लम्बे केश बिना यत्न के धरती पर लोटते थे । कभी वह सिर में तेल न देती थी । जब तब रूखे स्नान के अनन्तर बालों को समेट कर जटा की भाँति बाँध लेती थी । रानी सती का यह भाव देख कर बहुत दुखी होती थी । अविवाहिता किशोरी की वेषभूषा के सम्बन्ध में ऐसी उदासीनता देख कर कौन माता होगी जो धैर्य रख सकेगी ? इसलिए वह कभी कभी झिझक कर सती से कहती थी:—

बेटी, तुम अब धीरे धीरे सयानी होती जा रही हो, किन्तु तुम्हारी यह कैसी समझ है? न तुम कभी अच्छा कपड़ा पहनती हो, न कोई अच्छा गहना। कहाँ तक कहूँ, तुम सिर के बाल तक नहीं बाँधतीं। इस तरह रहने से लोग तुम्हें पगली कहेंगे। कोई तुमसे ब्याह करना न चाहेगा।

राजा दक्ष भी सती का भाव देख कर क्षुब्ध रहते थे। किन्तु वह सरलता की मूर्ति, ममता की पात्री, और आँख की पुतली थी, इसी से वे उससे कुछ न कहते थे। विशेषकर सती में यह एक दोष था कि वह बड़ी कोमलहृदया थी, थोड़े ही में उसके कमल से नयनों में आँसू भर आते थे। इस कारण वे सती को लक्ष्य करके रानी से कहते थे—"मेरी बेटी पगली है, दैव न करे कि यह किसी पागल के हाथ पड़े।"

जब सती ब्याहने योग्य हुई तब दक्ष ने योग्य वर ढूँढ़ने की इच्छा से अपने भाई नारद मुनि को बुलाकर कहा—"आप सर्वत्र जाते हैं, क्या राजा क्या रङ्क, क्या गृही, क्या संन्यासी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके साथ आपका परिचय न हो। मेरी सती के लिए आप एक अच्छा वर ढूँढ़ कर ला दें तो मैं विशेष उपकृत होऊँ।"

"जो आज्ञा" कहकर नारदजी बाहर निकले। अनेक स्थानों में घूमते फिरते कनखल लौट कर उन्होंने राजा दक्ष और उनकी रानी से कहा—"मैं आपकी सती के लिए एक अत्यन्त योग्य वर ठीक कर आया हूँ। सती के योग्य वैसा और कोई वर मेरी दृष्टि में नहीं आता।"

दक्ष ने बड़ी आतुरता से पूछा—"कैसा वर। वे कौन हैं?"

नारद ने कहा—"वे कैलासपुरी के राजा हैं।"

सुनकर दक्ष की भौं ज़रा ऊपर को तन गई। उनके कुछ पूछने के पूर्व ही रानी ने—"कैलासपुरी ? वह तो यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ जाने का मार्ग भी तो सुगम नहीं है। वहाँ सती का ब्याह होने से मैं उसे बराबर न देख सकूँगी। देखने की कौन बात उसका कुशल-समाचार तक जल्दी न मिलेगा।"

नारद—"आपको किस बात की कमी है जो इच्छा करने पर दूरस्थ होने के कारण आप सती का संवाद न ले सकेंगी ? आप सती को बराबर देखती रहें यह अच्छा, या उसे योग्य वर के हाथ देकर आप निश्चिन्त हो रहें—यह अच्छा ? यदि आपकी सती योग्य वर पाकर सुखपूर्वक रहे तो आप उसे हमेशा न देखें, इसमें क्या हानि ?"

राजा और रानी ने कुछ देर इस बात को मन में सोच कर निश्चय किया कि नारदजी ठीक कहते हैं।

दक्ष ने पूछा—"वर पढ़े लिखे हैं ? उनकी बुद्धि कैसी है ?"

नारद—"बुद्धि-विद्या में उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। वेद, वेदान्त और तन्त्र आदि ऐसा कोई शास्त्र नहीं जो उनका जाना न हो। वे सभी विद्याओं में पारङ्गत हैं। उनकी बुद्धि-विद्या कैसी है वह आप इतने ही से समझ सकेंगे कि स्वयं वशिष्ठ ने उनसे वेद, परशुराम ने धनुर्वेद और मैंने गान्धर्व-विद्या सीखी है।"

यह सुनकर दक्ष का मुँह प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने कहा—"वर का बल पराक्रम कैसा है ?"

नारद—"उसका परिचय उनके पिनाक धनुष से ही हो सकता है। उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा, भूमण्डल में

ऐसा कोई नहीं जो उसे उठा सके। कैलासपति ने इसी धनुष पर बाण चढ़ा कर त्रिपुरासुर को मारा था।"

रानी—"वर देखने में कैसा है?"

नारद—"यह आपसे क्या कहूँ। वैसा शाल (साखू) वृक्ष सा लम्बा और दृढ़ शरीर, वैसा आजानुबाहु, वैसा आकर्ण-विशालनयन, वैसी कर्पूर सी गोराई, वैसा सतत प्रसन्नमुख किसी का नहीं देख पड़ता। वे महापुरुष सती ही के दहने भाग में शोभा पाने योग्य हैं।"

सती की एक सखी, जिसका नाम विजया था, किसी कार्य-वश रानी के पास आई थी। सती के व्याह की बातचीत सुनकर वह दौड़ कर सती के पास गई और बोली—"सखी, तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ। तुम इतने दिन से जिनके लिए तपस्या कर रही थीं, जिनका ध्यान तुम्हारे मन में आठों पहर बना रहता है, उन्हीं कैलासपति के साथ तुम्हारे व्याह की बातचीत हो रही है।"

सती कुछ न बोली। केवल अपने दोनों कर-कमलों को जोड़ कर उत्तर ओर मुँह करके उसने शङ्कर को प्रणाम किया।

इधर फिर रानी ने नारद से पूछा—"वर के पास धन-सम्पत्ति भी है।"

नारद—"रत्नगर्भ कैलास उनका राज्य है। यक्षों के राजा कुबेर उनके भण्डारी हैं।"

धन के विषय में नारद को इससे अधिक परिचय देना न पड़ा। कौन ऐसी धनाभिलाषिणी स्त्री होगी जिसने धनाधिप कुबेर का नाम न सुना होगा। हीरा, मोती, मानिक, नीलम आदि

भाँति भाँति के रत्न जिसके घर में पाये जा सकते हैं वही कुबेर जिसके भण्डार-नवीस हैं उसकी अतुल ऐश्वर्यराशि का हिसाब कौन कर सकता है ?"

रानी ने उमँग कर पूछा —"वर के माता, पिता, भाई और बहन जीवित हैं ?"

नारद ने मुस्कुरा कर कहा—"वर में यदि कुछ दोष है तो इतना ही। उनके वंश में कोई दूसरा नहीं है। इसका आप कुछ सोच न करें। सास ससुर सदा सबके जीते नहीं रहते। ब्याह होने के साथ हमारी सती कैलास की रानी होगी।

रानी ने नारद की ओर त्योरी चढ़ा कर देखा।

नारदजी बोले—"मैं वर के विषय में दो एक बात और आपसे कह देना उचित समझता हूँ। वह दोष हो या गुण आप उस पर विचार कर लें। कर्तव्य अकर्तव्य का निर्णय पहले ही कर लेना चाहिए। पीछे आप लोग मुझे कोई इलज़ाम न दें, इसलिए जो जानता हूँ वह आप लोगों से अभी कह सुनाता हूँ। वह संसार से एक-दम विरक्त है। उसके लिए जैसा घर वैसा मरघट, जैसा चंदन वैसी ही चिता की भस्म। वे सदा चिन्ता में मग्न रहते हैं, किन्तु उनकी चिन्ता कुछ अपने सुख-सम्भोग के लिए नहीं, संसार के कल्याण के लिए। उनका अधिकतर समय श्मशान में रहकर मुर्दों की हड्डी की परीक्षा में, जङ्गल में रहकर पौधों के गुणागुण के विचार में, और पहाड़ की गुफा में रहकर खान से निकलने-वाली वस्तुओं के तत्त्वनिरूपण में व्यतीत होता है। तत्त्वनिरूपण के लिए वे विषपान में और सर्प के धारण में भी कभी कुण्ठित न हुए। इन्हीं कारणों से वे गृही होकर भी संन्यासी और राजा होकर भी फ़क़ीर हैं। मैंने वर के दोष-गुण, आचार-अनाचार सभी

आपको सुना दिये, अब आप लोगों का जैसा विचार हो करें।"

यह सुनकर दक्ष का मुँह भारी हुआ। वे बार बार सिर हिलाने लगे। क्या करना चाहिए, इसका वे कुछ निश्चय न कर सके। रानी की एक चतुर दासी वहाँ बैठी थी। उसने रानी को चिन्तित देखकर कहा—"महारानीजी, आप कुछ चिन्ता न करें। बे माँ-बाप के कितने ही ऐसे लड़के हैं जो घरबार का काम छोड़ कर इधर-उधर घूमते-फिरते हैं। हमारी सती यदि और राजकुमारियों की भाँति चतुर होगी तो एक ही महीने में अपने पति को पक्का गृहस्थ बना लेगी।"

यह सुन कर रानी को कुछ धैर्य हुआ। उसने पति से कहा—"सब गुण एक साथ कहाँ मिलेंगे! लड़की को योग्य वर के हाथ सोंप देना माँ-बाप का कर्तव्य है, हम इस कर्तव्य का पालन करेंगे इसके अनन्तर लड़की का जैसा भाग्य होगा। वर जब रूप, गुण, बल, पराक्रम और धन में किसी से न्यून नहीं है तब सती को उन्हीं के साथ ब्याह देने की मेरी इच्छा होती है। फिर महाराज की जैसी इच्छा हो।"

दक्ष—"विधाता को जो करना है, वह मैं समझ गया। मुझे डर था कि लड़की जैसी पगली है, कहीं वैसे पागल वर के हाथ न पड़े। ठीक वही हुआ। जब तुम्हारी इच्छा है तब इसी वर की बात स्थिर रहे।"

इस पर अधिक तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता न रही। कैलासपति के साथ सती के ब्याह की बातचीत ठीक हुई। महाराज दक्ष बड़ी धूमधाम के साथ लड़की के ब्याह की तैयारी करने लगे।

शुभ दिन शुभ घड़ी में सती का ब्याह हो गया। राजभवन जितना दीपमाला से देदीप्यमान न हुआ उतना राजकुमारियों की उज्ज्वल रूपराशि से हुआ। नारद ने वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सच कहा था। जटाजूट के भीतर से भी उनका मुखमण्डल पूर्णचन्द्र की भाँति और भस्मलेपन के भीतर से भी उनके शरीर की गोराई झलक रही थी। यह देखकर राजघराने की जितनी स्त्रियाँ थीं सब मुग्ध हो रहीं। महल्ले भर की स्त्रियों ने एक-स्वर से कहा—"जैसी सती है वैसा ही उसे भगवान् ने वर दिया। केवल रानी के मन में यह सोचकर कुछ क्षोभ हुआ कि नारद ने जो उनके अतुल ऐश्वर्य की बात कही थी, वह दूल्हे के व्यवहार से कुछ ज़ाहिर न हुई। विवाह के दिन भी उनके गले में रुद्राक्ष की माला, शरीर में भस्म और कमर में बाघ का चमड़ा था। सती के लिए भी वे अपना ही सा भूषण-वसन लाये थे। यह देखकर रानी क्षुब्ध हो रही। यह क्या! यदि ऐसे महोत्सव में उन्होंने सती को अच्छा भूषण-वस्त्र न दिया तो फिर कब देंगे! किन्तु नारद तो ऐसे नहीं हैं जो झूठ बोलेंगे। कदाचित् वे घर की असली हालत न जानते हों!"

रानी को इस प्रकार सोच-सागर में डूबी हुई देखकर निमंत्रित बन्धुपत्नियों में से एक ने कहा—"जब दूल्हे के माँ-बाप, भाई-बन्धु या माँ-बहन कोई नहीं है तब दूल्हे को विवाह के योग्य वस्त्र कौन सजा कर पहनाता, कौन उनका विवाह-कालिक वेषविन्यास करता। दूल्हा आप ही तो अपनी सूरत सवाँर कर ब्याह करने नहीं जाता है। ये जैसे, जिस पोशाक में अपने घर पर बराबर रहा करते थे, वैसे ही, उसी पोशाक में, यहाँ आये हैं। आप इसके लिए सोच न करें।"

एक दूसरी स्त्री ने कहा—"सती के भाग्य में धन-सम्पत्ति का सुख-संभोग लिखा होगा तो अवश्य ही होगा। आप स्वयं रानी हैं और यह आपकी दुलारी राजकुमारी है। इसे किस बात का कष्ट होगा? ऐसी एक लड़की की कौन बात, दस लड़कियों का भी आप भलीभाँति पालन-पोषण कर सकती हैं।"

यह बात रानी को अच्छी न लगी। उन्होंने नारद से पूछा—"आपने जो दूल्हे की उतनी धन-सम्पत्ति की बात कही थी, उसका कुछ प्रमाण देखने में न आया। दूल्हा मेरी सती के लिए न कोई अच्छा कपड़ा लाया न कोई भूषण। विवाह के समय में लड़की को रुद्राक्ष की माला! यह क्या? मेरी बेटी संन्यासिनी तो है नहीं। क्या राजकन्या को आपने कंगाल से तो न व्याह दिया?"

नारद—"मैंने आपसे कोई बात झूँठ न कही थी। मेरे वचन पर आप विश्वास करें। आपकी सती सचमुच ही राजराजेश्वरी हुई है। अभी आप कुछ न बोलें, कुछ दिन धैर्य से रहें। सती जब एक बार ससुराल से होकर आवेगी तब आप देखेंगी कि सती का कैसा भूषण-वसन है। तब आप समझेंगी कि आपके जामाता कैसे ऐश्वर्यशाली हैं।"

यह सुन कर रानी और उनकी सब सहचरी प्रसन्न हुईं।

दूल्हे के व्याह के समय का पहनावा ओढ़ावा और उनके बरातियों की अजीब सूरत-शकल देखकर राजा दक्ष को भी पूरी खुशी न हुई। उनके अन्यान्य जमाई और नातेदार लोग हाथी, घोड़े, रथ पर आये थे, किन्तु उनके नये दामाद आये थे एक खूब मोटे ताज़े, ऊँचे सींगवाले बैल पर। और जामाताओं के साथ आये थे हाथ में सोने की छड़ी छत्र आदि लिये अच्छे

अच्छे भूषण-वसन से सुसज्जित सुन्दर नौकर, किन्तु नये दामाद के साथ आये थे हाथ में त्रिशूल लिये नङ्ग धड़ङ्ग नन्दी। बरातियों का भयङ्कर आकार और अद्भुत भाव देख कर कनखल के रहनेवाले और लोग भी भयभीत और चकित हुए। उन लोगों ने कहा, "महाराज ने यह कैसा सम्बन्ध किया है?" किन्तु जो उनमें समझदार थे, उन्होंने सबको समझा दिया कि यह कुछ नई बात नहीं है, पहाड़ी लोगों का रङ्ग-रूप और भाव ही ऐसा होता है। वर का निश्चल भाव, सरल व्यवहार और सदा प्रसन्न मुख देख कर पुरवासियों के मन का क्षोभ क्रमशः जाता रहा।

राजा, रानी और पुरवासियों के मन का भाव ऐसा ही था। सती के मन का भाव कैसा था यह कहने की आवश्यकता नहीं। साधु-संन्यासियों के मुँह से जिनकी प्रशंसा सुनकर सती जिन्हें इष्टदेव समझ कर नित्य हृदय में पूजती थी, आज वही उसके सामने पति के रूप में विराजमान हैं। सती के मन का भाव क्या शब्दों के द्वारा समझाया जा सकता है? चारों आँखें बराबर होते ही सती ने सम्पूर्ण रूप से अपने को कैलासपति के चरणकमलों में अर्पित कर दिया। उनका वह चारुचन्द्रविनिन्दक मुँह, उनका वह रजत पहाड़ सा गौर शरीर, ऐरावत गजशुण्ड सा विशाल दीर्घ बाहु, किवाड़ के तख्तों की सी चौड़ी छाती, कमल से भी कोमल और सुन्दर चरण सती के मन में विहरने लगे। सती ने ध्यानस्थ शङ्कर की रमणीय मूर्ति से निवेदन किया—"नाथ! आपही सती के सर्वस्व हैं। आप ही के लिए सती का जन्म हुआ है। ईश्वर मुझे आपकी सहधर्म्मिणी होने की योग्यता दे। मुझे वह ऐसा ज्ञान दे कि मैं आपके चरणों की भलीभाँति सेवा कर सकूँ।"

ब्याह होने के पीछे सती शङ्कर के साथ कैलासपुरी गईं। सती के आगमन से कैलासपुरी ने नवीन शोभा धारण की। फूलों में सुगन्ध बढ़ गई। पक्षियों की सङ्गीतध्वनि में विशेष माधुर्य का अनुभव होने लगा। विरक्त कैलासपति सती को पाकर संसारी हुए। धर्म-कर्म के प्रभाव से सती पति की अर्धाङ्गिनी बन सुख भोगने लगी।

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होने पर वसन्त ऋतु के आने से कैलास ने एक अपूर्व ही शोभा धारण की। दिन रात लगातार पाला पड़ने से कैलास के वृक्ष-लतागण फूल-पत्तों से रहित होकर श्रीहीन हो गये थे। ऋतुराज से उनकी यह दुर्दशा न देखी गई। उसने उन वृक्ष-लताओं को नव-पल्लवों से सुशोभित कर दिया। सब पेड़-पौधे हरे भरे हो गये। पर्वत-राज कैलास ने सफ़ेद बर्फ़-रूपी वसन त्याग कर शैवाल (सेवाँर) रूपी श्यामल वस्त्र धारण किया। उजले, पीले और लाल आदि रङ्ग रङ्ग के फूल विकसित होकर कैलास की शोभा बढ़ाने लगे। बर्फ़ गल कर सैकड़ों धाराओं के रूप में नीचे की ओर प्रधावित होने लगा। जाड़े के डर से जो सब प्राणी कैलास छोड़ कर उष्ण-प्रधान देश में चले गये थे, उनके आने से कैलास फिर सजीव हो उठा। कैलास का उपवन फिर से लहलहा उठा। सारा उपवन भ्रमरों के झंकार से भर गया। जहाँ तहाँ पेड़ों पर कोयल और पपीहों का मधुर शब्द सुनाई देने लगा। अत्यन्त भीरुस्वभाव कस्तूरी-मृग नये तृण के लोभ से फिर पहाड़ के निम्न प्रदेश से धीरे धीरे वहाँ आने लगे। चमरी गाय पत्थर के टुकड़े पर खड़ी होकर नाक के छेदों को प्रसारित कर वसन्तकालिक शीतल मन्द सुगन्धित वायु के सुख-स्पर्श का अनुभव करने लगी। सारांश यह कि ऋतुराज के

आगमन से कैलास के पेड़-पौधे और लताओं ने तथा पशु-पक्षियों ने फिर से नई स्फूर्ति और नवीन जीवन का लाभ किया।

पर्वत के एक बहुत ऊँचे दुर्गम शिखर पर महादेव के रहने का अत्यन्त स्वच्छ सुन्दर आश्रम बना था। उसके चारों ओर बड़े बड़े ऊँचे देवदारु के पेड़ खड़े थे। वही उनके निवासस्थान को चारों ओर से घेरे हुए क़िले का काम दे रहे थे। वह स्थान अत्यन्त रमणीय, निर्जन और प्रशान्त था। तपोवन की गम्भीरता के साथ उपवन की शोभा सम्मिलित होने से वह स्थान तपश्चर्या और गार्हस्थ्य सभी सुखभोग के उपयुक्त हो रहा था। उस स्थान के समीप एक बहुत पुराना देवदारु अपने डाल-पत्तों को चारों ओर फैलाये खड़ा था। उसके नीचे सघन छाया में स्वभावनिर्मित एक शिलामय वेदी (चबूतरा) थी।

एक दिन साँझ को उसी चबूतरे पर व्याघ्रचर्म का आसन बिछाये कैलासपति बैठे थे। उनके वाम भाग में सती बैठी थीं। एक जङ्गली लता देवदारु के पेड़ से लिपट कर झूम रही थी। सायङ्काल की हवा लग कर उस वृक्ष की शाखायें मन्द मन्द डोल रही थीं, जिससे बीच बीच में दो एक फूल झड़ कर उन दोनों देवदम्पती के ऊपर गिरते थे। मानो वे लता-वृक्ष भक्ति-भाव से पुष्पाञ्जलि देकर उनकी पूजा कर रहे थे। शिव के मस्तक पर जटाजूट, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, सर्वाङ्ग में विभूति और कमर में बाघम्बर शोभा दे रहा था। सती का भी वेष-विन्यास पति के अनुकूल ही था। वह गेरुवा वसन पहने थी। गले में रुद्राक्ष की माला और हाथों में चूड़ी के स्थानापन्न रुद्राक्ष शोभा दे रहा था। उसकी खुली हुई केशराशि पीठ पर से लटक कर धरती पर लोट रही थी। उन दोनों के पास ही हाथ में त्रिशूल लिये नन्दी

खड़े थे। दोनों दम्पती के मुँह अस्तकालीन सूर्य की सुनहरी किरण पड़ने से बहुत सुन्दर मालूम होते थे। नन्दी उल्लासपूर्वक निर्मिमेष दृष्टि से वह अपूर्व शोभा देख रहे थे। पितृवत्सल पुत्र जिस भाव से माता-पिता को, अनुरक्त प्रजा जिस भाव से राजा-रानी को, और साधक भक्त जिस भाव से अपने इष्टदेव और देवी को देखते हैं उसी भाव से नन्दी चुपचाप सती-शङ्कर को देख रहे थे। कैलासपति सती के साथ संसारी जीवों के सुख-दुःख के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। उपवन में पशु-पक्षी, पेड़-पौधे निःशब्द और निस्पन्द होकर उन दोनों का वार्तालाप सुन रहे थे। अस्त होते हुए सूर्य की ओर लक्ष्य करके महादेव ने सती से कहा—"प्रियतमे! देखो, जो सूर्य इतनी देर अपनी उज्ज्वल किरणों से संसार में उजेला किये हुए थे उनका अब न वह तेज है न वह प्रकाश। कुछ ही देर में वे प्रभाहीन होकर अदृश्य हो जायँगे। संसार में मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही अनित्य है। जो आज ज्ञानगौरव से देदीप्यमान हो रहे हैं, वे कल किसी अन्धकार से भरे गढ़े में छिप जायँगे, किन्तु मनुष्य ऐसे भ्रांतिशील और प्रमादी होते हैं कि इस क्षणस्थायी जीवन के सुख-दुःख को चिरस्थायी समझते हैं।"

सती ने कहा—"नाथ, सूर्य्य का जैसे उदयअस्त होता है क्या मनुष्य का भी वैसे ही होता है?"

महादेव—"हाँ, ऐसा ही कुछ है। साधारण लोग जिसे जन्म-मृत्यु कहते हैं, ज्ञानी लोग उसी को उदय-अस्त कहते हैं। किन्तु सूर्य के दैनिक उदय-अस्त के साथ इनकी ज्योति का जैसे कुछ परिवर्तन लक्षित नहीं होता वैसे मानव-जीवन का नहीं।

प्रत्येक नर-जन्म के साथ मनुष्य उत्तरोत्तर ज्ञान लाभ करके उन्नति अवस्था को प्राप्त हो सकता है।"

"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्"

केवल जो लोग धर्महीन हैं वही दिन दिन अधोगति को प्राप्त होते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

सती—"तो क्या धर्महीन जीव की गति नहीं होती? क्या वे दिनों दिन अधोगति को ही प्राप्त होते हैं?"

महादेव—"नहीं, ऐसा नहीं होता। जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है। समस्त पापों का प्रायश्चित्त होने पर जीव परमगति को प्राप्त होता है, यही प्रकृति का नियम है। कर्म निःशेष होने पर जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। जीव को शुभाशुभ कर्म का अवश्य भोग करना पड़ता है।"

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"

इस प्रकार दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। ऐसे समय में कुछ दूर पर अत्यन्त मधुर-वीणा का शब्द सुनाई देने लगा। साथ ही इसके कुछ गाने की भी आवाज़ आने लगी। यह मीठे स्वर से गाता हुआ कौन आ रहा है?

"जय जय शंकर कैलासपती"

"वाम भाग में सती विराजत अति आनन्दमती।
अङ्ग विभूति जटा सिर सोहत त्रिभुवननाथ यती॥"

सती को यह स्वर बहुत दिन का पहचाना था। सुनते ही

उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। वह गद्गद् कण्ठ से बोली, "यह स्वर और किसका होगा? मेरे चचा महर्षि नारद आ रहे हैं।"

इतने ही में अपनी उज्ज्वल कान्ति और विशद मुसकुराहट से दसों दिशाओं को विकसित करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे। परस्पर यथायोग्य अभिवादन और अभ्यर्थना के पश्चात् जब नारद स्वस्थ होकर बैठे तब सती ने उनसे पूछा—"कनखल का क्या समाचार है? मेरे माता, पिता और बहनें आदि सब लोग अच्छे तो हैं?"

नारद—"समाचार अच्छा है। तुम्हारे माता, पिता और बहन आदि सब लोग कुशलपूर्वक हैं।"

सती— "मेरे पिताजी ने इतने दिन मेरी कुछ खोज-ख़बर क्यों न ली?"

नारद—"तुम्हारे पिता आज-कल बड़े काम में हैं। वे एक महायज्ञ की आयोजना कर रहे हैं। इस यज्ञ में वे भारत के क्या राजा, क्या रङ्क, क्या पण्डित, क्या मूर्ख, क्या बड़े, क्या छोटे, सभी को नेवता देंगे। मालूम होता है, उसी यज्ञ-सम्बन्धी महासमारोह के कारण वे तुम्हारी सुध न ले सके।"

सती ने हुलस कर पूछा—"क्या आप पिता की आज्ञा से मुझको उस यज्ञ में ले जाने के लिए यहाँ आये हैं?"

नारद—"नहीं, मैं जो यहाँ आया हूँ, यह तुम्हारे माता-पिता किसी को मालूम नहीं। मैं इस मार्ग से कहीं जा रहा था। बहुत दिनों से तुम्हें न देखा था। इसीसे स्वयम् तुमको देखने आया हूँ।"

सती--"पिता यज्ञ की इतनी बड़ी तैयारी कर रहे हैं, देश-देशान्तर के लोगों को नेवता भेज भेजकर बुला रहे हैं, हम लोगों को न इसकी ख़बर दी न नेवता भेजा ! इसका क्या कारण ?"

नारद्--"इस बात का उत्तर मैं क्या दूँ ? तुम्हारे पिता को मतिभ्रम हुआ है । सुना है, इस यज्ञ में वे तुमको नेवता न देंगे।"

यह सुन कर सती को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने भग्नस्वर में पूछा—"हम लोगों का अपराध क्या है ?"

नारद्—"सुना है, कैलासपति के व्यवहार से उन्होंने अपने को अपमानित समझा है । उसी अपमान का बद्ला लेने के लिए वे अपने समस्त बन्धुबान्धवों और कुटुम्बों को नेवता देंगे, केवल तुमको नहीं।"

सती—"मेरी माँ को यह बात मालूम है ?"

नारद्—"मालूम है । उसने अपने पति से बहुत अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने पत्नी का अनुरोध न माना । रानी ने मारे सोच के अन्न-जल त्याग दिया है । तुम्हारी चिन्ता से उसे रात को नींद् नहीं आती । अब इन बातों की आलोचना से कुछ फल नहीं । मुझे दूसरा काम है । मैं जाता हूँ ।" यह कह कर नारद् चले गये ।

सती ने विनयपूर्वक कैलासपति से कहा—"पिता आपके व्यवहार से अपने को अपमानित समझ कर रुष्ट हैं, इसका अर्थ मेरी-समझ में कुछ न आया ।"

कैलासपति ने कहा—"देवी, मैंने उनका अपमान नहीं किया है । किसी को अपमानित करने का मेरा स्वभाव नहीं है । असल

बात यह है कि कुछ दिन हुए, किसी सभा में अन्यान्य देवताओं के साथ मैं भी बैठा था। तुम्हारे पिता प्रजापति जब उस सभा में आये, तब और लोगों ने उनका जिस प्रकार स्वागत किया मैं उस प्रकार उनका स्वागत न कर सका। सुना है, तभी से वे मुझ पर क्रुद्ध हैं और मुझको अपमानित करने का उपाय खोज रहे हैं। तुम्हारे मन में खेद न हो, इस भय से मैंने इतने दिन तुमसे यह बात न कही थी।"

सती—"नाथ, मेरी एक प्रार्थना है। आपकी आज्ञा पाऊँ तो मैं एक बार कनखल जाऊँ। पिता को सब बात समझा कर फिर शीघ्र ही यहाँ चली आऊँगी।"

महादेव—"यदि अवसर दूसरा रहता तो जाने में कोई बाधा न थी। किन्तु अभी जाने से वे क्रोधवश तुम्हारा अपमान करें तो कोई आश्चर्य नहीं।"

सती—"मेरा अपमान वे क्यों करेंगे? मैंने तो उनका कोई अपराध नहीं किया है।"

महादेव—"तुम बड़ी सरलहृदया हो। तुम प्रजापति के स्वभाव से भली भाँति परिचित नहीं हो। अपने घमण्ड में चूर होकर ऐसा कोई अयुक्त काम नहीं है जो वे न कर सकें। जब उनके मन में यह धारणा हुई है कि मैंने उनका अपमान किया है तब सुयोग पाकर मेरा या मेरे अभाव में तुम्हारा अपमान करने में वे ज़रा भी संकोच न करेंगे। तुम स्वयं इस बात को सोच सकती हो कि जब उन्होंने हम लोगों का अपमान करने ही के लिए इस यज्ञ का आरम्भ किया है तब बिना बुलाये इस यज्ञ में जाना उचित है या नहीं।"

सती--"नाथ ! मेरी समझ ही कितनी कि इन बातों का तत्त्व जान सकूँगी । बात यह है कि बेटी को बाप के घर जाने में निमन्त्रण की क्या ज़रूरत है ? विशेष कर जब देवर्षि नारद कह गये हैं कि मेरी माँ ने मेरे लिए खाना-पीना छोड़ दिया है। यह सुनकर भी अपमान के भय से उनके पास न जाना क्या मेरे लिए उचित होगा ?"

महादेव—"इस बात का कोई उत्तर नहीं है। जब तुम्हारी इच्छा जाने की है तब जाओ । वहाँ की अवस्था देख भालकर काम करना । परन्तु मुझे आशङ्का होती है कि इस यज्ञ का परिणाम मेरे, तुम्हारे या प्रजापति, किसी के लिए अच्छा न होगा ।"

नन्दी ने महादेव की आज्ञा पाकर बात की बात में सती के कनखल जाने का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया । सती ने पिता के घर जाने के लिए कोई नया भूषण-वसन धारण न किया । जिस तपस्विनी भेस से वह कैलास में थी, उसी भेस से वह कनखल गई । उसके कण्ठ में स्फटिक की माला, हाथ में रुद्राक्ष की चूड़ी, अङ्ग में विभूति, खुली हुई आगुलफलम्बित केशराशि और गेरुआ वस्त्र, इससे अधिक उसके वेष-विन्यास में और कुछ न था । कन-खलवासियों में जिन लोगों ने सती को बाल्यावस्था में देखा था, उन लोगों ने नवोदित उषा की भाँति उसकी तेजस्विनी मूर्त्ति देख कर आश्चर्य भरे भाव से भूमिष्ठ होकर उसको प्रणाम किया । सती किसी से कुछ न कहकर महल के भीतर जिस घर में रानी धरती पर पड़ी हुई रो रही थी, एकाएक वहीं जा पहुँची, और माँ को अत्यन्त दुःखाकुल देखकर मधुर स्वर में बोली—"माँ, मैं आपको देखने आई हूँ ।"

संजीवन मन्त्र की भाँति वह सुधासिक्त मधुर स्वर रानी के कान में प्रविष्ट होते ही वह चौंक उठी और आँख के सामने सती को देख कर बड़े प्यार से उसे छाती से लगा कर बोली—"मेरी बेटी! तुम आ गई?" यह कह कर वह बार बार उसका मुँह चूमने और बलैया लेने लगी। दोनों माँ-बेटियों की आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बह चली।

सती ने कहा—"माँ, मैं एक बार पिता को देख आती हूँ।"

रानी—"नहीं बेटी, महाराज अभी यज्ञशाला में हैं। वहाँ जाने का कुछ काम नहीं।"

सती—"माँ, मैंने पिता को बहुत दिन से नहीं देखा, जी लगा है, एक बार उनका दर्शन कर आती हूँ।"

यह कह कर रानी के कोई बात बोलने के पूर्व ही वह यज्ञ-शाला की ओर चल दी।

राजभवन के सामने खूब लम्बे चौड़े मैदान में यज्ञ की आयोजना हुई थी। नाना देश-दिशाओं से साधु, संन्यासी और दर्शक-गण वहाँ आये थे। राजा दक्ष के जैसे ऐश्वर्य की सीमा न थी वैसे ही उनकी यज्ञ-सामग्री का भी अन्त न था। ऊपर रेशमी कपड़े का बहुत बड़ा शामियाना खड़ा था, नीचे यज्ञ की वेदी थी। पुरोहितगण यज्ञवेदी पर मंडलाकार चारों ओर बैठे थे। उनके बीच में दक्ष प्रजापति विराजमान थे। पवित्र होम का धुआँ चारों ओर उड़ रहा था। बार बार आहुति देने से प्रज्वलित अग्नि का उत्ताप लग कर दक्ष का मुँह लाल होगया है, जिससे वे साक्षात् मूर्त्तिमान् अग्निदेव की भाँति दिखाई दे रहे हैं। सती को आते देख कर जितने वहाँ लोग थे सभी ने सम्मानपूर्वक रास्ता

छोड़ दिया । सती ने पिता के चरणों के समीप जाकर साष्टांग प्रणाम किया । कुछ देर के लिए पुरोहितों के कण्ठ में वेदमंत्रों ने विश्राम पाया । हवनकर्ता का हाथ आहुति देने से रुक गया । प्रजापति ने इसका कारण ढूँढ़ने के लिए दृष्टि उठा कर देखा । सती हाथ जोड़े उनके सामने यज्ञवेदी पर खड़ी हैं । सती को देख कर उनका मुख प्रसन्न हुआ । वे स्नेह-भरे मीठे स्वर से बोले—"सती, तुम भी आईं ?"

किन्तु कुछ ही देर में उनका भाव बदल गया । उनकी भौंहें ऊपर को तन गईं । मुँह अस्तकालीन सूर्य की भाँति लाल हो गया । उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"सती, तू यहाँ क्यों आई ? किसने तुझको यहाँ आने कहा ?" पिता के विषाक्त बाण की भाँति इस कठोर वचन ने सती का मर्मच्छेद कर डाला । जन्म से आज तक पिता के मुँह से उसने ऐसा कठोर वाक्य कभी न सुना था । वह आँखों के आँसुओं को रोक कर बोली—"मैंने बहुत दिनों से आपको न देखा था, इसी से आपको देखने आई हूँ ।"

सती की इस करुणा-भरी वाणी ने सभास्थ सभी लोगों के हृदय को द्रवित कर दिया । किन्तु वह वाणी दक्ष के हृदय को न पिघला सकी । उन्होंने फिर कड़क कर कहा—"तुझको किसने यहाँ आने कहा ? मैंने तो तुझे बुलाया नहीं ।"

सती—"माता-पिता के दर्शनार्थ आने के हेतु सन्तानों को बुलाने की क्या आवश्यकता है ? मेरा तो यह अपना घर है । मैं बिना बुलाये ही आई हूँ ।"

दक्ष—"यह बात प्रजापति की कन्या के मुँह से बाहर होने

योग्य नहीं। विधाता ने जिस निर्लज्ज के हाथ में तुझको सौंप दिया है, यह उसी की पत्नी के मुँह से निकलने योग्य है।"

सती--"पिताजी, आप उन्हें निर्लज्ज कह कर क्यों वृथा गाली देते हैं ?"

दक्ष—"निर्लज्ज कहना गाली हुआ ? पहनने को जिसे कपड़ा नहीं, गृहस्थ होकर भी जो संन्यासी बना है, उसे निर्लज्ज कहा तो गाली देना हुआ ? अनाचारी होने के कारण स्वर्गलोक में रहने को जिसे जगह नहीं; घर और स्मशान, चन्दन और चिता की राख, अमृत और विष जिसके लिए बराबर है, वह निर्लज्ज ही नहीं, पागल है ! ज्ञानशून्य है !"

सती—"अच्छा, वे निर्लज्ज ही हों, किंवा उन्मत्त ही हों, वे मेरे देवता हैं। आप व्यर्थ उनकी निन्दा न करें। उनकी निन्दा सुनने की अपेक्षा मेरा मर जाना अच्छा है।"

"दक्ष का सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। वे कुछ बोलना चाहते थे, परन्तु क्रोधाधिक्य से उनके मुँह से कोई शब्द न निकला।"

सती —"आप क्रोध न करें। क्षमा कीजिए। यदि हम लोगों से कोई अपराध हो पड़ा है तो कहिए, क्या उस पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं है ?"

दक्ष—"प्रायश्चित्त है। तुम्हारे मरने ही से प्रायश्चित्त होगा। मैं जिस दिन सुनूँगा कि तू मर गई, उस दिन मैं समझूँगा कि उस अधम के साथ मेरा सम्पर्क न रहा। जिसके साथ सम्बन्ध नहीं उसके साथ रागद्वेष कैसा ?"

सती—"तो यही आप चाहते हैं ? यही आपकी आज्ञा होती है ? क्या बिना मेरी मृत्यु के आपका क्रोध शान्त न होगा ?"

दक्ष—"नहीं ।"

सती—"आप धीरज धरें । वही होगा । यदि मेरे मरने से आपका क्रोध दूर हो, आपके गौरव की रक्षा हो और हम सबों के अपराध को आप भूल जायँ तो इससे बढ़कर मेरे लिए सुख की मृत्यु और कब होगी ? मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी, किन्तु आप उनकी निन्दा न करें ।"

यह कह कर सती यज्ञकुण्ड के एक ओर योगासन लगाकर बैठ गई । उसने उत्तराभिमुख हो कर अपने गेरुवे वसन से पैर से सिर तक सर्वाङ्ग ढक लिया । सभास्थ सब लोग विस्मित होकर चित्रवत् इस अपूर्व दृश्य को देखने लगे । सती का क्या उद्देश्य है, किस लिए सर्वाङ्ग को वस्त्र से आवृत करके योगासन लगा कर बैठी है—यह किसी ने न समझा । इसलिए किसी ने रोकने की भी चेष्टा न की। देखते ही देखते सती के शरीर से एक अद्भुत ज्योति निकली । उस ज्योति से होमकुण्ड की ज्वाला निष्प्रभ हो गई और वह ज्योति सती के ब्रह्मरन्ध्र से निकल कर अनन्त प्रकाश के साथ कुछ काल में आकाश में छिप गई । टूटी हुई देव-मूर्त्ति की भाँति सती का स्थूल शरीर क्षण भर में धरती पर गिर पड़ा, फिर उठा नहीं ।

दक्ष के यज्ञ का परिणाम क्या हुआ, इसका उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं । प्रतीकार का सामर्थ्य रखते हुए पुत्रगण जिस बेदर्दी के साथ अपने मातृघाती को मार कर हृदय का शोक मिटाते हैं, कैलासपति के दूतगणों ने उसी प्रकार बड़ी निष्ठुरता के साथ सहायकसहित दक्ष को मार कर सती की मृत्यु का बदला लिया । जहाँ दक्ष का मेघस्पर्शी विशाल राजभवन

था वहाँ अब उसका चिह्न-मात्र नहीं है। जहाँ सती ने योगविधि से प्राणत्याग किया था वहाँ अब एक छोटा सा कुण्ड-मात्र बच रहा है। कनखल राजधानी की न अब वह पूर्व की शोभा है न वह सम्पत्ति है। वहाँ के रहनेवालों में न अब वह पराक्रम है न वह उत्साह है, सभी श्रीहीन दीन अवस्था में पड़े हैं। सती के अपमान-रूपी पाप के फल से वह अमरावती को लजानेवाला कनखल इस समय स्मशान सा हो रहा है। केवल गङ्गाजी अब भी पहले की तरह कलकल शब्द करती हुई उसके संनिकट प्रवाहित होकर इस पुरानी कहानी का लोगों में प्रचार कर रही है। जब तक इस भारत-भूमि में गङ्गा की धारा रहेगी तब तक सती के पवित्र चरित्र का कीर्तन घर घर होता रहेगा।

दूसरा आख्यान

सुनीति

शरद् ऋतु में जिसने कभी यमुना के कज्जल जल की शोभा देखी होगी वही जान सकता है कि यमुना के प्रवाह में कितनी रमणीयता भरी है। उस यमुना के किनारे एक उपवन सुशोभित था। सारा उपवन बेला, चमेली, गुलाब, जुही और मौलसरी आदि भाँति भाँति के फूलों से महँक रहा था। उसी उपवन के भीतर राजा उत्तानपाद का राजभवन था। उत्तानपाद स्वायंभुव मनु के पुत्र थे, इसलिए उनके ऐश्वर्य और प्रताप की बराबरी करनेवाला उस समय कोई न था। उनके दो रानियाँ थीं। पहली का नाम सुनीति था और दूसरी का सुरुचि। दोनों रङ्ग-रूप और गुण में अनुपम थीं। जैसे लक्ष्मी और सरस्वती से वैकुण्ठ-भवन की शोभा है वैसे ही इन दोनों रानियों के द्वारा उत्तानपाद के अन्तःपुर की शोभा थी।

एक दिन महल के भीतर एक छोटी सी कोठरी में रानी सुरुचि अकेली भूमि पर पड़ी थी। उसके बाल खुले थे। शरीर में कोई गहना नहीं। एक फटा पुराना मैला कपड़ा पहने थी। रोते रोते उसकी दोनों आँखें सूज गई थीं और लाल हो गई थीं। साँस खूब तेज़ी के साथ चल रही थी।

दासीगण कोठरी के द्वार पर खड़ी होकर सम-दृष्टि से उसकी ओर ताक रही थीं। किन्तु उससे कुछ पूछने का उन्हें साहस नहीं होता था। क्रमशः साँझ का समय हुआ। राजा उत्तानपाद् राजकाज से छुट्टी पाकर भीतर महल में आये। किन्तु आज और दिन की भाँति प्रियतमा सुरुचि को अपनी कोठरी में न देख कर वे उसे खोजते खोजते उसी कोठरी के भीतर जा पहुँचे। पत्नी को उस अवस्था में देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सुरुचि का अङ्गस्पर्श करते हुए बड़े प्यार से पूछा—"प्यारी! यह क्या? आज तुम इस तरह यहाँ क्यों पड़ी हो?"

रानी ने कुछ उत्तर न दिया। उसने अपने मुँह को आँचल से ढक लिया।

राजा ने रानी के मुँह पर से कपड़ा हटा कर देखा, रोते रोते उसकी आँखें सूज गई हैं और चम्पक से मुखमण्डल ने रक्त-कमल की शोभा धारण की है। राजा का हृदय दुःख से भर गया। उन्होंने फिर पूछा—"प्यारी! कहो, तुम्हें क्या हुआ है? तुम्हारे नैहर से कोई अनिष्ट संवाद तो नहीं आया है?"

तथापि रानी कुछ न बोलीं। तब राजा उसके पास बैठ कर उसका हाथ पकड़ कर प्रणय वाक्यों से उसको इस प्रकार समझाने लगे—"प्यारी, तुम ऐसा मलिन वेष किस लिए धारण किये हुए हो? यदि किसी ने तुम्हारा अपमान किया है तो उसका उचित दण्ड देने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। यदि तुम्हरे मन में किसी तरह का अभिलाष हो तो कहने के साथ उसे पूर्ण हुआ समझो।"

इस तरह राजा ने अनेक अनुनय वाक्य कहे पर रानी ने

किसी तरह मौन भङ्ग न किया। बल्कि वह और भी विलख विलख कर रोने लगी। आखिर राजा ने कहा—"प्रिये! मैं दिन भर के काम से थक कर तुम्हारे पास आया हूँ। मेरा अङ्ग अङ्ग दुखता है। मैं भूख-प्यास से व्याकुल हूँ। अगर तुम्हारी नाराज़गी का कोई सबब हो तो पीछे मान ठानना। अभी मुझे कुछ खिलाओ पिलाओ।"

अब की बार सुरुचि उठ बैठी। उसका इशारा पाकर चतुर दासी राजा के भोजन योग्य सब सामग्री ले आई। सुरुचि ने अपने हाथ से चौका लगाकर आसन पानी रख दिया। राजा सन्ध्या-वन्दन करके भोजन करने बैठे। रानी उनके पास बैठ कर पंखा झलने लगी। भोजन करके हाथ-मुँह धो राजा ने रानी को अपने पास बिठा स्नेहभरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा, "प्यारी, तुम्हें मेरी सौगन्द है, क्या हुआ है कहो तो।"

सुरुचि—"महाराज, मैं आपकी एक दासी हूँ। दासी का इतना आदर क्यों?"

राजा—"तुम्हारे मन में क्या है, यह मैं नहीं समझ सकता। यदि तुम दासी हो, तो मेरी पत्नी कौन है?"

सुरुचि—"पत्नी है सुनीति। यदि आप मुझको पत्नी समझते तो मुझे दुःख क्या था? यदि अपा मुझे दासी ही बना कर रखना चाहते हैं तो आपने मुझसे ब्याह क्यों किया?"

राजा—"तुम्हारा क्या मतलब है, मैं नहीं समझा। तुम मुझसे सब बात खोल कर कहो।"

सुरुचि—"आप सुना ही चाहते हैं तो मैं कहती हूँ, सुनिए। किन्तु अपने अपराध की माफ़ी मैं पहले ही आपसे माँग लेती

हूँ। आपके कोई पुत्र न था, इस कारण पुत्र की कामना से आपने मेरे पिता से मुझको माँग लिया था। आपको धर्मात्मा और सत्य-वादी जानकर पिता ने सौत रहते भी मुझको आपके हाथ में समर्पण कर दिया था। वे तो जानते थे कि आप मुझको धर्मपत्नी भाव से ग्रहण करेंगे। किन्तु—"

सुरुचि की बात पूरी होने के पूर्व ही उत्तानपाद बोले—"प्यारी! क्या मैंने तुम दोनों के बीच कुछ विभेद-बुद्धि दिखलाई है।"

सुरुचि—"इस राजभवन का सबसे उत्तम कोठा जो सदा यमुना नदी के शीतल जल-वायु का स्पर्श करता है, वह आपने किसको दे रक्खा है।"

उत्तानपाद—"तुम्हारे ब्याह होने के पूर्व ही से सुनीति उस कोठे में रहती है, तुम कहो तो उससे सौगुना सुन्दर रमणीय कोठा तुम्हारे लिए बनवा दूँ।"

सुरुचि—"आपके कोशागार में जो सबसे उत्तम मोती-माला है, वह आपने किसको दी है।"

उत्तानपाद—"प्यारी! मुझे क्यों व्यर्थ दोष देती हो? वह माला दुर्लभ है, इसमें सन्देह नहीं। मेरे पूर्वजों ने बहुत दिनों तक वरुणदेव की आराधना करके पुरस्कारस्वरूप यह माला उनसे पाई थी। मेरे ब्याह होने के पीछे पिताजी ने वह माला सुनीति को दी। मैंने नहीं दी है। मैंने तुम्हारे लिए भी एक वैसे हार की तलाश की थी, किन्तु समुद्र के दक्षिण तटवर्ती सौदागरों ने कहा कि वैसे मोती अब नहीं मिलते। इसी से मैं अब तक कृतकार्य न हो सका।"

सुरुचि ने व्यङ्ग करके कहा—"इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य और क्या होगा। किन्तु इस प्रकार कपट-प्रेम दिखलाने में क्या फल? भूषण-वस्त्र की बात जाने दीजिए। अग्निहोत्र के समय केवल सुनीति ही क्यों आपके साथ बैठती है? क्या मैं आपकी सहधर्मिणी नहीं हूँ?"

उत्तानपाद—"तुम भूलती हो। मैंने जो अग्निहोत्र व्रत धारण किया है वह दो एक दिन के लिए नहीं, जीवन भर के लिऐ किया है। तुम अभी अल्पवय की हो, तुम्हारा शरीर अत्यन्त कोमल है। उपवास का कष्ट न सह सकोगी, इसीलिए सुनीति ही अपने ऊपर कष्ट लेती हैं। तुमको कष्ट देना नहीं चाहती। विशेषतः—"

सुरुचि—"विशेषतः क्या?"

राजा—"यही कि बहुत पत्नियों के रहते धर्माचरण में बड़ी पत्नी ही का पहला अधिकार है।"

सुरुचि—"महाराज? अब आपको अधिक कहना न होगा। मैं समझ गई। आपके राजभवन में मेरे लिए जगह नहीं है। अन्तःपुर का सबसे बड़ा कोठा सुनीति का, कोशागर का सर्वोत्तम रत्न सुनीति का, धर्म-कर्म में प्रथम अधिकार सुनीति का। केवल कुतिया की भाँति आपके अन्न से पेट पालने का मेरा अधिकार है। आप अपनी धर्मपत्नी को लेकर रहें, मैं जाती हूँ।" यह कह कर सुरुचि उठ खड़ी हुई।

राजा ने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ कर फिर अपने पास बिठाया और बड़े प्यार से उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा—"प्यारी! मैं सच कहता हूँ। तुम मेरी आँखों की पुतली और घर की शोभा हो।"—राजा कुछ और कहना चाहते थे, परन्तु सुरुचि ने बीच ही में रोक कर कहा—"शोभा की बात आप सच कहते

इस पर भी ज़रा भी अविश्वास नहीं करती। आपने मुझको और भूषण-वस्त्र से सजाकर मिट्टी की मूर्ति बनाकर अपने घर की शोभा बढ़ाने के लिए रख छोड़ा है। धिक्कार है स्त्रीजन्म को! धिक्कार है पुरुष की रूपस्पृहा को!"

उत्तानपाद—"तुम व्यर्थ क्यों खेद करती हो?" मैं अभी सुनीति के पास ख़बर भेज कर बुलाता हूँ। मैं उसके हृदय को भली भाँति जानता हूँ। वह तुम पर जितना स्नेह रखती है, उससे यदि उसे किसी तरह मालूम होगा कि वही तुम्हारे सुख का काँटा हो रही है, वही दुःख का कारण है, तो अवश्य वह तुम्हारे दुःख का परिशोध करेगी।"

राजा ने एक दासी से कहा—"बड़ी रानी से जाकर कहो कि वह एक बार यहाँ आकर मुझसे भेंट करे।"

दासी सुनीति को बुलाने गई। तब सुरुचि आप ही आप ईर्ष्या-भरे धीमे स्वर में बोलने लगी—"बड़ी रानी! बड़ी रानी! सब कोई कहते हैं बड़ी रानी! वह बड़ी रानी और मैं छोटी रानी! वह बड़ी काहे से? वह राजा की बेटी है तो क्या मैं नहीं हूँ? वह राजा को ब्याही है तो क्या मैं उनको ब्याही नहीं हूँ? वह सुन्दरी है, क्या मैं कुरूपा हूँ? तो वह बड़ी मैं छोटी क्योंकर? यदि मैं मथुरा के महाराज की राजकुमारी हूँगी तो दिखा दूँगी कि बड़ी रानी का नाम मिटता है या नहीं। सब लोग आँख पसार कर देखेंगे कि एक राजा और एक रानी के सिवा दूसरा कोई न रहेगा। छोटी हूँ या बड़ी, मैं ही एक रहूँगी।"

इसी समय राजा की आज्ञा सुनकर सुनीति वहाँ आई। वह कुछ ही देर पहले भगवान् की सन्ध्या-आरती देखकर आई थी।

इसलिए वह जिस वेष में दर्शन करने को गई थी उसी वेष में राजा के पास आई। वह रेशमी साड़ी पहने थी, ललाट में चन्दन लगाये थी, कण्ठ में भगवान् के प्रसादस्वरूप फूल की माला थी, मुख की शोभा खिले हुए गुलाब के फूल की सी थी, चेहरे पर शान्ति छाई थी, देखने से मालूम होता था जैसे वह साक्षात् कोई देवी की मूर्ति हो। युवावस्था का चपल सौन्दर्य दूर होकर प्रौढ़ अवस्था की गम्भीर शोभा उसके सर्वाङ्ग में विकसित हो रही थी। उत्तानपाद ने एक बार सुनीति के स्नेह और करुणा भरे, सरलता के आधारस्वरूप मुखमण्डल की ओर देखा। उनके नयनों में आँसू भर आये। वे सुनीति से कुछ कह न सके।

इधर सुनीति ने कोठरी के भीतर प्रवेश करते ही देखा, सुरुचि के बाल खुले हैं, शरीर में एक भी आभूषण नहीं, मैला कपड़ा पहिरे है। उसे देखकर सुनीति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विलम्ब न कर झट सुरुचि के पास जा बैठी और उसके बिखरे हुए बालों को समेट कर बोली—"बहन, यह क्या ? तुम्हारा आज ऐसा भेस क्यों। देखती हूँ, न तुम्हारे बाल बँधे हैं, न शिर में सिंदूर है, शरीर में धूल मिट्टी लगी है ; रोते रोते तुम्हारी दोनों आँखें सूज गई हैं। क्या हुआ है। मथुरा से कोई अनिष्ट संवाद तो नहीं आया है !"

सुरुचि ने सुनीति के हाथों से अपनी विलुलित केशराशि छुड़ा कर कर्कश स्वर में कहा—"सुनीति! तुम मुझे मत छुओ।"

सुनीति आश्चर्य के साथ बोली—"क्यों बहन! तुम तो कभी मेरा नाम न लेती थीं, बराबर जीजी कहती थीं। आज तुम्हें क्या हुआ है ? क्या मुझ पर नाराज़ तो नहीं हो ?"

सुरुचि के उत्तर देने के पूर्व ही राजा उत्तानपाद ने कहा—"सुरुचि आज तुम्हारे और मेरे ऊपर बहुत रुष्ट है। उसकी यह धारणा है कि मैं उसकी अपेक्षा तुमको अधिक चाहता हूँ। वह कहती है कि मैंने ही तुमको यह सर्वोत्तम मोती-माला दी है।"

सुनीति—"यही बात है! इसके लिए इतना मान क्यों? यह लो बहन! जब तुम यहाँ न आई थीं तभी स्वर्गीय महाराज ने यह हार मुझको दिया था। इस हार पर जैसा अधिकार मेरा है वैसा ही तुम्हारा भी। आज से यह तुम्हारा हुआ।" यह कह कर सुनीति ने तुरन्त अपने कण्ठ से माला निकाल कर सुरुचि को पहना दी। दीपक के प्रकाश में हार अपनी अपूर्व चमक चारों ओर फैलाने लगा, किन्तु सुरुचि ने झट उसे गले से निकाल दूर फेंक दिया; और रूखे स्वर में बोली—"सुनीति, मैं मथुराधीश की राजकुमारी हूँ। भिखमंगिन नहीं हूँ जो तुम्हारा दान लूँगी। तुम अपनी माला अपने पास रहने दो।"

राजा और सुनीति दोनों ही सुरुचि का व्यवहार देख कर अवाक् हो रहे। कुछ देर के बाद राजा ने कहा—"क्या करने से तुम्हें सन्तोष होगा? किस तरह तुम्हारा क्रोध शान्त होगा? कहो, हम दोनों वही करें।"

सुरुचि ने कहा—"महाराज! सुनिए, इस महल में हम दोनों अब एक साथ नहीं रह सकतीं। मैं जितने दिन बालिका थी, अपना भला-बुरा कुछ न जानती थी, उतने दिन सुनीति ने जो कुछ मुझे दिया मैं उसी में तृप्त रही। किन्तु मैंने अब अपने अधिकार को जाना है, जो मेरा प्राप्य है वह मुझे मिलना चाहिए।"

सुनीति—"यह तो अच्छी बात है। इसके लिए तुम इतनी असन्तुष्ट क्यों हो? जो तुम्हारा प्राप्य है वह तो तुमको मिलेहीगा;

इसके अतिरिक्त मेरी निज की जो वस्तु है वह भी मैं तुमको दे सकती हूँ।"

राजा ने ठण्डी साँस भरी। मानो उनके हृदय का बोझ कुछ हलका हुआ। उन्होंने कहा—"सुरुचि! देखो, बड़ी रानी तुमको कितना प्यार करती है। तुमको उस पर रोष न करना चाहिए।"

सुरुचि—"आप स्त्री का हृदय क्या जानें। स्त्री और सब वस्तुओं का भाग दे सकती है किन्तु अपनी इच्छा से वह कभी स्वामी के प्रेम का भाग नहीं दे सकती। वस्त्र, अलङ्कार और सारी सम्पत्ति पर सुनीति ही का अधिकार रहे, मैं केवल अपने स्वामी पर एकाधिकार चाहती हूँ।"

कुछ देर के लिए सुनीति के चेहरे पर कालापन छा गया। किन्तु उसने चित्त के वेग को रोककर अपने स्वाभाविक मधुर स्वर में कहा—"बहन, तुम्हारे आने के पूर्व मैंने बहुत दिनों तक एकाकिनी होकर स्वामी की सेवा की है। तुम भी तो उनकी धर्मपत्नी हो, इसलिए मैंने जो सुख उनसे पाया है वह सुख पाने की तुम भी अधिकारिणी हो। अब तुम अकेली उनकी सेवा करो। मैं तुम दोनों को सुखी देख कर सुखी हूँगी।"

सुरुचि ने सुनीति की बात का कुछ उत्तर न देकर राजा से कहा—"महाराज, मैं आपसे सच कहती हूँ। इस महल में अब हम दोनों का रहना कदापि नहीं हो सकता। आप चकित न हों। मैं किस लिए यह कह रही हूँ सो सुनिए। आपकी पहली स्त्री में जब पुत्रोत्पत्ति न हुई तब आपने मेरे पिता से मुझे माँग कर मेरे साथ ब्याह किया था। उनका दौहित्र (नाती) भविष्यत् में राज्याधिकारी होगा, इसी आशा से उन्होंने आपके हाथ मुझे सौंप दिया था। किन्तु यदि आप हम दोनों के साथ समान

भाव से संसार-धर्म का निर्वाह करेंगे तो मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसे राज्य मिलने की आशा बहुत ही कम रहेगी। उस दिन महर्षि बौधायन ने हम दोनों को देखकर "युवां पुत्रवत्यौ भवताम्" कह कर आशीर्वाद दिया था। महर्षि का वाक्य कभी विफल नहीं हो सकता। इसलिए मेरा पुत्र पहले उत्पन्न हो या पीछे। सुनीति के पुत्र होने से कितने ही प्रजागण बड़ी रानी का पुत्र जानकर अवश्य ही उसका पक्ष लेंगे। उस अवस्था में मेरा बेटा निष्कण्टक राज्य न भोग सकेगा।"

सुनीति--"बहन, यदि यही तुम्हारे उद्वेग का कारण हो तो तुम इसके लिए चिन्ता न करो। यदि भगवान् मेरे बेटा देंगे तो तुम निश्चय जानो, मेरा पुत्र कभी राज्य का लोभ न करेगा। जो पद राजपद से भी श्रेष्ठ है मैं उसे वही पद प्राप्त करने की शिक्षा दूँगी।"

सुरुचि--"राजपद से भी श्रेष्ठ पद! तुम उसे क्या शिक्षा दोगी?"

सुनीति--"उसे तुम न समझ सकोगी।" यह बात सुरुचि के मर्म में जा लगी। वह चुटीली नागिन की भाँति क्रोध से गरज कर बोली--"सुनीति! तुम सुनो, महाराज! आप भी सुनें, पुत्र ही के लिए पत्नी प्रयोजनीय है। लिखा भी है--

पुत्रप्रयोजना भार्या

किन्तु सुनीति के द्वारा जब आपका वह प्रयोजन सिद्ध न हुआ तब आपने मेरे साथ ब्याह किया। इसलिए आपके महल में दो स्त्रियों के रहने की आवश्यकता नहीं। चाहे आप मुझको बिदा करके सुनीति को लेकर रहें, चाहे उसे बिदा करके मेरा जो हक़ है वह मुझको दें।"

सुनीति की आँखों में आँसू भर आये । उसने करुणा-भरे स्वर में कहा—"बहन, क्यों ऐसी बात बोलती हो ? आओ, हम तुम दोनों मिल कर स्वामी की सेवा करके जीवन सार्थक करें । मैं राज्य, धन, सम्पत्ति आदि कुछ नहीं चाहती । दिन में एक बार पति के चरण की पूजा करूँगी, यही एक-मात्र मेरी वासना है ।"

सुरुचि—"यह न होगा । वसन्त-काल में नवपल्लव होने के पूर्व ही पुराने पत्तों को स्थानच्युत होना पड़ता है । इस महल में तुम रहोगी तो मैं न रहूँगी ।"

राजा की ओर देख कर सुनीति बोली—"महाराज! क्या आपकी भी यही राय होती है ?"

राजा के सर्वाङ्ग में मानो सैकड़ों बिच्छू एक साथ डंक मार रहे थे । उन्होंने सुरुचि की ओर कातरदृष्टि से देखा, उसकी आँखों से मानो आग की चिनगारियाँ झड़ रही थीं । वे कलप कर सुनीति से बोले—"प्यारी ! मैं क्या कहूँ ? जिसमें मेरी प्राणरक्षा हो सो करो ।"

सुनीति राजा के मन का भाव समझ गई । वह हाथ जोड़ राजा को प्रणाम करके उस कोठरी से बाहर हो गई । उसने झट अपने अङ्ग के भूषण उतार कर अपनी एक विश्वासपात्री दासी को दिये और आप अकेली चुपचाप उस अँधेरी रात में न मालूम किधर चल दी । कुछ ही देर बाद महल के भीतर कोलाहल मचा कि बड़ी रानी कहाँ गई, उसका पता नहीं । सवेरे एक पहरेदार ने आकर सूचना दी कि जिस गुप्त द्वार से महल की स्त्रियाँ यमुना में स्नान करने जाती हैं, वह द्वार रात को खुला था । यमुना नदी के किनारे महावर से अङ्कित पैर का चिह्न अब तक

वर्तमान है। यह सुनकर पुरवासियों ने अनुमान किया, बड़ी रानी विषाद से यमुनाजल में डूब कर मर गई। इस शोकसंवाद ने राजा को मर्मान्तिक कष्ट दिया। वे सुनीति के वियोग से बहुत दुखी हुए। परन्तु कुछ ही दिनों में राजा के शोकाश्रु के साथ साथ सुनीति का नाम भी लुप्त हो चला।

यमुना के किनारे उत्तर तरफ़ एक घना जङ्गल था, जो बहुत दूर तक फैला हुआ था। उस जङ्गल के भीतर महर्षि अत्रि का पवित्र आश्रम था। वहाँ कितने ही तपस्वी ऋषि सपत्नीक निवास करते थे, वहाँ हिंसा द्वेष का नाम न था, भोग-विलास का चिह्न-मात्र न था। सब लोग परस्पर हिल-मिल कर बड़े आनन्द से समय बिताते थे। आश्रम के पास ही एक झोंपड़ा था। देखने से वह और कुटीरों की अपेक्षा नया मालूम होता था। उसके चारों तरफ़ तुलसी के वृक्ष लगे थे। एक तपस्विनी अकेली उस कुटिया में रहती थी। स्वरूप और व्यवहार में अन्यान्य तपस्विनियों से उसकी कुछ विभिन्नता न थी। उसका शरीर तपाये हुए सोने की भाँति सुन्दर था। सभी अङ्ग सुडौल थे। उसके चेहरे पर एक ऐसा प्रभावशाली शान्तभाव छाया था जिसे देखने से उसके सामने सिर नवाने की इच्छा होती थी। वह गेरुवा कपड़ा पहने थी। गले में तुलसी की माला और सिर में गोपीचन्दन का तिलक शोभा दे रहा था। अधिक समय वह ध्यान में निमग्न रहती थी। कभी कभी कुटी से बाहर होकर वह पेड़ के गिरे पत्ते और फल फूल संग्रह कर ले आती थी। यह अत्यन्त दयावती थी। आश्रम में जब कभी कोई बीमार होता तब वही उसकी सेवा करती और शोकार्त को सान्त्वना देती थी। ऋषिगण घोंसले से गिरे हुए पक्षी के बच्चे और मातृहीन मृगछौने

के पालन का भार उसी के हाथ सौंपते थे। उसकी कुटी में सदा हरिनाम का कीर्तन होता था। जब वह भगवान् का गुन गाते गाते थक जाती थी तब उसके पालित शुकसारिकागण "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" उच्चारण कर उस स्थान को पवित्र करते थे। उसके ऊपर आश्रम-वासियों की बड़ी भक्ति थी। महर्षि ने उसका नाम आश्रमलक्ष्मी रख दिया था। उसी नाम से वह सबों में परिचित थी। तपोवन में किसी का विशेष परिचय पूछना मना था, इससे कोई कभी उसका परिचय न पूछता था, केवल अत्रि मुनि उसका पूरा परिचय जानते थे।

एक दिन अग्निहोत्र करके अत्रि मुनि आश्रमलक्ष्मी की कुटी में आये। उनको आते देख आश्रमलक्ष्मी ने भक्तिपूर्वक उनके पैर पखार बैठने को आसन दिया। पीछे उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर वह अपने आसन पर जा बैठी। कुशल-प्रश्न पूछने के अनन्तर मुनि ने कहा—"बेटी! क्या मैं तुम्हारा मुँह कभी प्रसन्न न देखूँगा? तुम्हें जब देखता हूँ तभी तुमको उदास पाता हूँ। तुम्हारी आँखों में आँसू भरे ही रहते हैं। बेटी! तुम इतना क्यों रोती हो?"

आश्रमलक्ष्मी—"गुरुदेव! मैं न रोऊँगी तो कौन रोवेगा? न रोने से मेरे पाप का प्रायश्चित्त न होगा।"

अत्रि—"मैंने कई बार तुमसे कहा है, तुम निष्पापा हो। तुम अपने को क्यों पापिनी समझती हो? धर्म का अभिमान जैसे निन्द्य है वैसे ही आत्मापमान भी निन्दित है।"

आश्रमलक्ष्मी—"यदि मैं निष्पापा होती तो इतना मनस्ताप क्यों होता?"

अत्रि—"बेटी! मनस्ताप सर्वत्र पाप ही का सूचक नहीं होता। स्थलविशेष से कभी कभी उसका फल उलटा भी होता है। देखो,

सूर्यदेव प्रखर उत्ताप से पृथ्वी को जलाते हैं, तो क्या यह पृथ्वी की पापशान्ति के लिए ? नहीं, उसको फलप्रसविनी करने ही के लिए। भगवान् जो कभी कभी हम लोगों को दुःख से दग्ध करते हैं, वह केवल हम लोगों को दण्ड देने ही के लिए नहीं, हम लोगों के द्वारा कोई विशेष कार्यसाधन के लिए भी। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारा यह क्लेश तुम्हारे मङ्गल के लिए है। स्वामी से अलग होकर इतने दिन तुम जगत्स्वामी की जैसी भक्ति कर सकी हो, इसके पूर्व कभी न कर सकी होगी। आँसुओं के अविरल प्रवाह से तुम्हारी मलिनता धोई जाकर तुम्हारा स्वच्छ हृदय अब जगत्पति परमेश्वर के विहार करने योग्य हो गया। तुम्हारा क्लेश संसार को मङ्गलप्रद होगा। मैं अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ, तुम्हारे गर्भ से एक ऐसा महात्मा जन्म लेगा जो संसार में भक्तचूड़ामणि के नाम से ख्यात होगा और जो अध्रुव है, उसे छोड़ कर ध्रुव का ग्रहण करेगा।"

आश्रमलक्ष्मी—"आपका वाक्य कभी विफल न होगा। किन्तु कहाँ मैं, कहाँ मेरे प्रभु ? क्या अब उनके चरणों का दर्शन मुझे प्राप्त होगा।"

अत्रि—"बेटी, होगा, अवश्य होगा। विधाता के चरित्र को कौन जान सकता है ? वह सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव कर दिखाता है। समय अधिक हुआ। मैं अब जाता हूँ।"

इस प्रकार आश्रमलक्ष्मी को समझा बुझा कर और उसे आशीर्वाद देकर अत्रि मुनि अपने आश्रम को चले गये।

क्रमशः सूर्य्य मध्य-आकाशवर्ती हुए। दिन ढले चला। साँझ हुई। अन्धकार ने धीरे धीरे वनभूमि पर अपना अधिकार

जमाया । सन्ध्या होने के साथ साथ आकाश में काली घटा घिर आई । बड़े वेग से हवा बहने लगी । क्रमशः हवा ने आँधी का रूप धारण किया । बड़े बड़े पेड़ जड़ से उखड़ कर दूर जा गिरे । जङ्गली जानवर भयभीत होकर चीत्कार करते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे । देखते ही देखते वनभूमि ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया । पत्तों की खड़खड़ाहट और पेड़ों के परस्पर संघर्षण से अत्यन्त विकट शब्द होने लगा । कुछ ही देर बाद मूसलधार पानी बरसने लगा । किसका सामर्थ्य था जो उस झड़ी में बाहर ठहर सके ? आश्रमवासियों ने अपनी अपनी कुटी में प्रवेश किया और झड़ी बन्द होने की बाट देखने लगे । पहर से ऊपर हो गया तो भी झड़ी बन्द न हुई । आश्रमलक्ष्मी द्वार बन्द करके अपनी कुटी में बैठी थी । प्रबल वायु के झोंके से एक एक बार उसका घर हिल जाता था, साथ ही उसका हृदय काँप उठता था । इसी समय बाहर से कोई उसके द्वार में धक्का मार कर बोला—"भीतर कौन है ? प्राण जा रहा है, जल्दी द्वार खोलो ।"

आश्रमलक्ष्मी को प्रथम बार भ्रम हुआ । उसने समझा, वायु की सनसनाहट ही आर्तनाद का रूप धारण कर कान में प्रविष्ट हुई है । किन्तु वही शब्द स्पष्ट रूप से जब दो तीन बार उसके कानों में पड़ा तब उसने झट पट द्वार खोल दिया । दीपक का प्रकाश एकाएक दोनों के मुँह पर पड़ा । दोनों परस्पर एक दूसरे को देख कर चौंक उठे ।

आगन्तुक ने कहा—"अयँ ! बड़ी रानी !"

आश्रमलक्ष्मी—"आप महाराज !"

दूसरी बात बोलने के पूर्व ही दोनों मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े । क्या यह भी कहना होगा कि यह आश्रमलक्ष्मी पतिप्राणा

सुनीति थी और यह आगन्तुक राजा उत्तानपाद थे? सुनीति राजभवन त्याग कर यमुना के निकटवर्ती जङ्गल के भीतर प्रवेश कर दैवयोग से अत्रि मुनि के आश्रम में आ पहुँची। मुनि ने उसका परिचय पाकर और उसकी सुशीलता से मुग्ध होकर बेटी की भाँति उसे प्यार कर अपने आश्रम में रहने को जगह दी। वहाँ मुनि और मुनि-पत्नियों के सङ्ग रहने और उनके साथ बराबर धर्म-विषयक वार्तालाप करने में सुनीति का समय बड़े सुख से व्यतीत होता था। जन-समाज में रह कर जो ध्यान और धारणा दुःसाध्य होती है, वह उस शान्त तपोवन में सुनीति के लिए सुखसाध्य हुई। जैसे खेत सूर्य के उत्ताप से पहले दग्ध होता है, पीछे हल से जोता जाता है और फिर वर्षा के पानी से ठंडा होकर अन्न उपजाता है, उसी तरह सुनीति सौत के दुर्व्यवहार से पहले दग्ध होकर पति के उपेक्षाभाव से विदीर्णहृदया हुई, पीछे अत्रि मुनि के वात्सल्य और सदुपदेश से ठंडी होकर ध्रुव के सदृश हरिभक्त पुत्र उत्पन्न करने की अधिकारिणी हुई। दैवयोग से उसे इसी कुटी में पतिपद-सेवा का सुयोग मिला। राजा उत्तानपाद आखेट करने आये थे। वे झड़ी में रास्ता भूल कर भटकते भटकते सुनीति की कुटी में उपस्थित हुए। अत्रि मुनि ने यथार्थ ही कहा था कि "विधाता के चरित्र को कौन जान सकता है। वह असम्भव को सम्भव कर देता है।"

झड़ी बन्द होने के साथ साथ आश्रमवासियों ने जाना कि आश्रमलक्ष्मी की कुटी में एक अतिथि आया है। सुन कर वे सब अतिथि के उपयुक्त आदर-सत्कार की आयोजना करने लगे। इस अतिथि के साथ आश्रमलक्ष्मी का क्या सम्बन्ध है, यह बात थोड़ी ही देर में सबको विदित हो गई। यह शुभ संवाद पाकर

मुनि-पत्नियों के आनन्द की सीमा न रही। वे सब अपने अपने घर से खाने पीने की उत्तमोत्तम वस्तु लेकर आश्रमलक्ष्मी के घर उपस्थित हुईं। कोई मक्खन, कोई दही, कोई मधु, कोई मधुर फल-मूल लाईं। कोई सुगन्धित फूल और माला, कोई चन्दन ले आई। सुनीति ने पति को भीगे और जाड़े से काँपते हुए देख कर उनके कपड़े बदलवाये और आग तपा कर उन्हें स्वस्थ किया। पीछे मुनि-पत्नियों की दी हुई सामग्री परोस कर उन्हें भोजन कराया। ऐसी सुस्वादु मधुर वस्तु उन्होंने अपनी ज़िन्दगी भर में कभी न खाई थी और वे भोजन करके कभी इस प्रकार तृप्त भी न हुए थे। दुःखिनी सुनीति इस जङ्गल में राजा के योग्य कोमल शय्या कहाँ पाती? उसने राजा के लिए कुटी के भीतर एक ओर अपना कुशासन बिछा दिया। राजा उसी पर सो रहे। नगर हो या तपोवन, स्त्रियों का स्वभाव सर्वत्र ही समान होता है। अत्रि मुनि की पत्नी ने स्वयं आकर आश्रमलक्ष्मी का केश बाँध दिया! अपने आँचल से उसका मुँह पोंछ कर उसके ललाट में कस्तूरी का तिलक और सिर में सिन्दूर भर दिया। मेघ हट जाने पर पूर्णचन्द्र जैसा सुन्दर देख पड़ता है, उससे भी बढ़कर सुनीति का मुँह सुन्दर दिखाई देने लगा। "बेटी लक्ष्मी! जाओ अब पतिरूपी नारायण की सेवा करके कृतार्थ हो।" यह कहकर अत्रिपत्नी अपने घर चली गईं।

सुनीति कुटी का द्वार बन्द करके पति के पास बैठकर उनके पैर दाबने लगी। उस समय उन दोनों में क्या क्या बातें हुईं, राजा ने किस तरह अपना दोष स्वीकार कर शत सहस्र बार क्षमा की प्रार्थना की, सुनीति ने किस प्रकार पतिव्रता के योग्य प्रेम से उनका संकोच दूर किया, यह सब कहने की आवश्यकता

नहीं, सहृदय पाठक-पाठिकागण स्वयं अनुभव कर लें। सुनीति ने पति-सेवा से कृतार्थ होकर प्रातःकाल पति को प्रणाम किया। राजा भी उसे बहुत तरह से समझा बुझाकर अपनी राजधानी को चले गये।

सुनीति इस प्रकार अत्रि मुनि के आश्रम में रहकर सुख-पूर्वक समय बिताने लगी। इधर सुरुचि सौत को हटा कर एकाधीश्वरी हुई। धन, जन, सम्पत्ति, स्वामी—सब पर उसका एकाधिकार हुआ। उसके पैर का काँटा और आँख का कंकड़ दूर हुआ। उसने सोचा कि अब वह निष्कण्टक सुख भोगेगी। किन्तु यह बात न हुई। उसका मन अशान्ति से भर गया। उसकी अशान्ति का प्रथम कारण लोकनिन्दा था, उसके डर से उसके मुँह पर कोई कुछ न बोलता था, परन्तु वह जानती थी कि परोक्ष में सब लोग उसकी निन्दा करते हैं। जब से बड़ी रानी खोई गई है तब से सब लोग इसका दोष छोटी रानी के माथे मढ़ते हैं। सुरुचि की अशान्ति का दूसरा कारण यह भी था कि जिनको लेकर वह सुख भोगती, वे ही सुखी न थे। पतिसेवा में यद्यपि वह कोई त्रुटि न करती थी तथापि पति को प्रसन्न करना उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। वह अपने हाथ से राजा के लिए नाना प्रकार के सुस्वादु पकवान बनाती थी। अपने हाथ से उनका पलँग बिछाती थी, पर तो भी देखती थी, वे न रुचि-पूर्वक भोजन करते हैं, और न उन्हें अच्छी नींद आती है। राज-कार्य में भी उनका जी नहीं लगता था। वे कभी चौंक उठते थे, कभी बिना कारण लम्बी साँस लेते थे, कभी एकान्त में चुपचाप बैठकर आँसू बहाते थे। सुनीति के अन्तर्धान होने के पीछे उसका शयनगृह, उसकी शय्या, उसके भूषण-वसन आदि सब वस्तुएँ

सुरुचि की हुईं। परन्तु सुनीति की कोई वस्तु उसको विशेष आनन्द न दे सकी। कारण यह कि सुनीति की कोई वस्तु देखते ही राजा का चेहरा उदास हो जाता था। वे सुनीति के पलँग पर सोने की अपेक्षा धरती पर सोकर विशेष सुख पाते थे। सुरुचि इसका कारण राजा से न पूछ सकती थी। उनकी उदासी का जो कुछ कारण वह अनुमान करती थी वह उसके हृदय को विदीर्ण कर डालता था। विशेष कर जिस दिन राजा आखेट से लौट कर घर आये, उस दिन से उनके मन का भाव और भी बदल गया। सुरुचि के ऊपर राजा के अनुराग और आदर की कमी न थी; पर तो भी सुरुचि के मन को सन्तोष नहीं मिलता था। उसके सन्तोष में एक न एक विघ्न आ पड़ता था। वह सोचती थी, जब सुनीति घर में थी तब इसकी अपेक्षा वह अधिक सुखी थी। राजा ऊपर के मन से उसको बहुत चाहते थे, परन्तु अन्तःकरण उनका किसी और ही दुःख से दुखी रहता था। इससे सुरुचि के मन में बराबर उदासी बनी रहती थी। इसी समय सुरुचि के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति से सौत के ऊपर पूरा जयलाभ हुआ जान कर और पुत्र के लाड़ प्यार में भूल कर सुरुचि के मन का उद्वेग कुछ दूर हुआ।

इधर तपोवन में सुनीति भी गर्भिणी हुई थी। गर्भ का समय पूर्ण होने पर उसने एक बहुत सुन्दर पुत्र प्रसव किया। अत्रि मुनि ने वेदविधि से बालक का जातकर्म करके उसका नाम ध्रुव रक्खा और कहा कि "यह बालक संसार में जो एक-मात्र ध्रुव है उसका लाभ करेगा।" ध्रुव शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिन दिन बढ़ कर माता के नयन और मन को तृप्त करने लगा। उसके काले घुँघराले बाल, कमल से सुन्दर नेत्र, नये

निकले हुए दो दाँत देख देख कर सुनीति के सब दुःख दूर हो गये। ध्रुव क्रमशः भूमि पर बैठने, घुटनों के बल चलने, खड़े होने, कुछ कुछ चलने और दौड़ने में समर्थ हुआ। जब वह अपराह्ण को मुनि-बालकों के साथ खेल-कूद कर सारे बदन में मिट्टी लगाये घर आता था तब सुनीति आँचल से उसके शरीर की धूल झाड़ कर उसे छाती से लगाती और अपने हृदय को ठंडा करती थी। महर्षि अत्रि की बड़ी लालसा लगी थी कि वे आश्रमलक्ष्मी के मुँह पर हँसी देखें, उनका यह मनोरथ पूर्ण हुआ। ध्रुव को देखते ही सुनीति का चेहरा खिल जाता था। उसके मुँह पर हँसी आ जाती थी। अत्रि मुनि कभी कभी आड़ से देखते थे, "सुनीति ध्रुव की ओर और ध्रुव सुनीति की ओर स्नेहभरी दृष्टि से देख रहे हैं। दोनों के होठों पर मीठी मुसकुराहट छाई है।" सुनीति ताली बजाकर ध्रुव को नाचना सिखलाती है। अत्रि मुनि स्वयं गृही थे, इसलिए पिता जिस तरह पुत्रवती बेटी के सन्तान के लालन-पालन में लगी देख कर सुखी होते हैं, वे भी उसी तरह सुनीति को ध्रुव का लाड़-प्यार करते देख कर सुखी होते थे। उनकी आँखों में आनन्दाश्रु उमड़ आते थे।

ध्रुव क्रमशः किशोर अवस्था में प्राप्त हुआ। उम्र बढ़ने के साथ साथ उसके शरीर का सौन्दर्य भी बढ़ने लगा। उसकी तपाये हुए सोने के सदृश देह की गोराई, अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सुन्दर गठन मीठी मुसकुराहट जो देखता वही मोहित होता था। सर्वोपरि ध्रुव का स्वभाव ऐसा कोमल था कि जङ्गल के पशु-पक्षी भी उसका साथ छोड़ना नहीं चाहते थे। ध्रुव ने माता की गोद में बैठ कर माता से भगवान् का गुण गाना सीखा था। साँझ

को ध्रुव आश्रम के मुनि-बालकों को साथ ले अपनी कुटी के अँगनाई में उमङ्ग भरे मन से हरिकीर्तन करता था। हाथ उठा कर और नाच नाच कर सब लड़के गाते थे—

"भैया! एक बार सब मिलकर आओ।"
ध्रुव गाता था—"प्रेम भाव से पुलकित होकर,
प्रभुवर का गुण गाओ।"
बालकगण—"आओ जङ्गल के पशु-पक्षी,
हरि से नेह लगाओ!"
ध्रुव—"जो सुख है हरिनाम भजन में,
सो सुख सब मिल पाओ।"
माता का उपदेश यही है,
हरि के भक्त कहाओ।"

यद्यपि इस सङ्गीत में तान, लय, राग-रागिनी आदि का कुछ भी समावेश न था तथापि जो सुनता वही मोहित होता था। बड़े बड़े वृद्ध ऋषीश्वर भी अपने नित्य नियमित पूजा-पाठ और होम भूल कर वह अपूर्व हरिकीर्तन सुनते थे और सुन कर ईश्वर के प्रेम में मग्न होकर आनन्दाश्रु बहाते थे। कण्ठ में तुलसी की माला, ललाट में गोपीचन्दन का तिलक, मुख में हरिनाम, ऐसे परम भक्त ध्रुव को देख कर जान पड़ता था जैसे परमेश्वर का प्रेम मूर्तिमान् होकर भूमण्डल में अवतीर्ण हुआ हो। ध्रुव का भक्तिभाव देख कर मुनिगण कहा करते थे, "ऐसी धर्मशीला माता के पेट से ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, इसमें आश्चर्य क्या है?"

मुनि के बालकगण जब तब कोई बात निकल आने पर अपने अपने पिता का यश गाते थे। किन्तु ध्रुव ने कभी अपने पिता को

न देखा था; इसलिए वह अपने पिता के विषय में कुछ न बोलता था। एक दिन बालकों ने ध्रुव से पूछा, "कहो भैया, हम लोगों के तो पिता हैं, क्या तुम्हारे पिता नहीं हैं? हम लोगों ने तो कभी उनको न देखा?" ध्रुव ने मुँह उदास किये माँ से आकर पूछा—"माता, मेरे पिता कहाँ?"

यह सुन कर सुनीति चकित हो बोली—"आज तुमने यह क्यों पूछा?"

ध्रुव—"मुनियों के लड़के सब आज मुझसे कहते थे, हमारे सभी के पिता हैं, क्या तुम्हारे पिता नहीं हैं? माँ! क्या सचमुच मेरे पिता नहीं हैं?"

सुनीति—"ऐसी अशुभ बात न बोलो। तुम्हारे पिता क्यों नहीं हैं? वे राजराजेश्वर हैं।"

ध्रुव—"माँ! मैंने तो उन्हें कभी देखा नहीं। वे हम लोगों के पास क्यों नहीं रहते?"

सुनीति—"यह मेरी अभाग्यता है! वे अपनी राजधानी में रहते हैं।"

ध्रुव—"उनकी राजधानी कहाँ है?"

सुनीति—"यहाँ से कुछ दूर यमुना के किनारे की उपवाटिका में उनका राजभवन है।"

ध्रुव—"मैं एक बार वहाँ जाकर पिता का दर्शन करना चाहता हूँ।"

सुनीति ने लम्बी साँस लेकर कहा—"राजधानी यहाँ से बहुत दूर है, तुम बालक हो। इतनी दूर अकेले न जा सकोगे।

यदि परमेश्वर दया करेंगे तो तुम्हारे पिता ही तुमको देखने आवेंगे ।"

ध्रुव ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर अपने साथी बालकों से अपने पिता का परिचय दिया । बालकों ने आपस में सलाह करके ध्रुव से कहा—"चलो, हम लोग एक बार राजधानी जाकर तुम्हारे पिता को देख आवें ।"

ध्रुव ने कहा—"मेरी भी यही इच्छा है ।"

दूसरे दिन सवेरे ऋषिबालकों ने ध्रुव को साथ लेकर राजधानी की यात्रा की । एक तो रास्ता किसी का देखा नहीं, दूसरे दूर तक जाने का अभ्यास नहीं । इस कारण वे सब घूमते फिरते ठीक दोपहर को राजधानी में उपस्थित हुए । भूख-प्यास से सब व्याकुल थे । उन्होंने समझा था, राजधानी आश्रम के सदृश ही कुछ विलक्षण जगह होगी, किन्तु वहाँ आकर वे सब बड़े बड़े ऊँचे कोठों, हाथी, घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रधारियों से भरा हुआ स्थान देखकर डर गये । उन बालकों का भेष देखकर नगर-निवासियों ने तुरन्त पहचान लिया कि ये लोग मुनि-बालक हैं ।

इसलिए किसी ने आदरपूर्वक उन बालकों को राज-भवन दिखला दिया । अनेक प्रकोष्ठ-युक्त, पर्वताकार, विशाल भवन देख कर बालकों के आश्चर्य की सीमा न रही । पहरेदार फ़ौजी पोशाक पहने हाथ में नङ्गी तलवार लिये सदर फाटक पर पहरा दे रहे थे । उनका भयङ्कर रूप और अभिमान से भरा हुआ भाव देख कर और बालक पीछे हटे, किन्तु ध्रुव आगे बढ़ कर बोला, "राजा कहाँ हैं ? मैं उनको देखना चाहता हूँ ।"

प्रहरी—"लड़के! तुम महाराज को देखना चाहते हो? तुम कौन हो? कहाँ से आते हो?"

ध्रुव—"मैं उनका बेटा हूँ। अत्रि मुनि के आश्रम से आता हूँ।"

प्रहरी—"राजकुमार तो घर पर हैं।"

ध्रुव—"प्रजा-मात्र कहती है कि मैं राजा का बेटा हूँ। मैं राजा से भेंट करूँगा।"

प्रहरी—"हम ऐसी खबर लेकर राजा के सम्मुख नहीं जा सकते।"

यह सुन कर उन बालकों में जो अपेक्षाकृत उम्र में बड़ा था वह आगे बढ़ कर बोला—"हम लोग ऋषिकुमार हैं, तपोवन से आते हैं। तुम्हारे महाराज को आशीर्वाद देंगे, खबर दो।"

सुनते ही द्वारपाल ने भीतर जा, हाथ जोड़ कर राजा से निवेदन किया, "महाराज! तपोवन से कितने एक ऋषिकुमार श्रीमान् को आशीर्वाद देने के लिए आये हैं। आज्ञा हो तो उन सबों को यहाँ ले आवें।"

राजा—"शीघ्र बुला लाओ।"

द्वारपाल का इशारा पाकर ध्रुव अन्यान्य ऋषिकुमारों के साथ राजदरबार में जा उपस्थित हुआ। इतने दिन इन बालकों ने काव्य और इतिहास में राज-सभा का जो कुछ वर्णन पढ़ा था वह आज इन्हें प्रत्यक्ष देखने में आया। संगमर्मर के चित्रित खंभों पर विशाल सभाभवन सुशोभित था, उसके भीतर विशेष पत्थर का बना थोड़ा सा ऊँचा चबूतरा था। उस पर रत्नजटित स्वर्णसिंहासन के ऊपर राजा उत्तानपाद राजसी ठाट में विराज-

मान थे । उनके दहने और बायें भाग में छोटे बड़े ज़मीनदार सामने मन्त्री और सभासद् लोग बैठे थे । कुछ दूर पर याचकगण खड़े थे । उसके आस पास पहरेदार हाथ में तलवार लिये इधर-उधर घूम रहे थे और हाथ के इशारे से जनकोलाहल का निवारण कर रहे थे । राजसभा गम्भीरता से भरी थी । सभास्थ सब लोग चुपचाप राजा की ओर देख रहे थे । ऋषिकुमारों ने वेद-मन्त्र पढ़ कर राजा को आशीर्वाद दिया । राजा ने विनयपूर्वक सबको प्रणाम कर योग्य आसन पर बिठाया । ऋषिकुमारों का सुकुमार शरीर, किशोर अवस्था, प्रसन्न मुख और सरल भाव देख कर सभास्थ सज्जनगण मुग्ध हुए । विशेष कर उन सबों के बीच एक बालक की ओर सबकी दृष्टि आकर्षित हुई । उसका वेष-विन्यास यद्यपि ऋषिबालक का सा था, तथापि उसके आकार से क्षत्रिय का लक्षण प्रकाशित होता था । इस छोटी सी उम्र में भी उसका शरीर सुडौल और बलिष्ठ था, छाती चौड़ी थी, बाँह शस्त्रधारण के योग्य प्रतीत होती थी । चेहरे से कोमलता के साथ साथ तेजस्विता सूचित होती थी । वह ध्रुव था ।

और ऋषिकुमारों के बैठने पर ध्रुव राजा के सिंहासन के समीप जा खड़ा हुआ और दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर राजा को प्रणाम किया ।

राजा ने कहा—"मैं क्षत्रिय हूँ । तुम ऋषिपुत्र होकर मुझे क्यों प्रणाम करते हो ?"

ध्रुव—"आप मेरे पिता हैं । मैं आपका पुत्र हूँ ।"

राजा—"तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँ से आते हो ?"

ध्रुव—"मेरा नाम ध्रुव है । मैं महर्षि अत्रि मुनि के आश्रम से आता हूँ ।"

राजा के सर्वाङ्ग में मानों बिजली दौड़ गई। उन्होंने ध्रुव को खींच कर गोद में बिठाना चाहा, परन्तु संकोचवश वे ऐसा न कर सके। वे गद्गद् कण्ठ से बोले—"वत्स! मैंने तो कभी तुमको देखा नहीं। तुम मुझे पिता बता रहे हो। तुम्हारी माता कौन है?"

ध्रुव—"तपोवन में सब लोग उसे आश्रमलक्ष्मी कहते हैं, किन्तु उसका असली नाम है सुनीति।"

सुनीति का नाम सुनते ही राजा प्रेम से विह्वल हो गये। उनकी लज्जा दूर हुई। उन्होंने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा कर ध्रुव से कहा—"आओ, प्यारे! मेरी गोद में बैठो।" यह कह कर उन्होंने बड़े प्यार से ध्रुव को गोद में बिठा कर उसे अपनी छाती से लगाया। उसके स्पर्श से राजा का शरीर मानो सुधा-सिक्त हुआ। सभास्थ लोग चित्र की भाँति निर्निमेष नेत्र से इस दृश्य को देखने लगे। कुछ ही देर में यह बात सारे महल में फैल गई कि "बड़ी रानी जीती हैं। उनका बेटा राजसभा में आया है।" यह संवाद बहुत बढ़ा चढ़ा कर महल में पहुँचाया गया। दो एक दासी ने कहा कि हम बड़ी रानी को अपनी आँख से राजसभा में देख आई हैं। अहा! उनका बदन सूख कर काँटा हो गया है। चेहरा एक-दम काला हो गया है। देखने से कोई न पहचानेगा कि ये बड़ी रानी हैं। बड़ी रानी के आने की बात सुन कर सब लोग सुखी हुए, केवल कोई कोई कहने लगे—"घर की लक्ष्मी घर आती हैं तो आवें, किन्तु उनकी बाघिन सौत क्या उनको सुख से रहने देगी?"

यह ख़बर सुरुचि के पास तक पहुँचने में देर न हुई।

"सुनीति जीती है, उसका बेटा राजसभा में आकर राजा की गोद में बैठा है" सुनते ही थोड़ी देर के लिए सुरुचि बावली बन गई। उसके होश हवास जाते रहे। जिस दिन राजा शिकार खेलने के लिए जाकर अन्यत्र रात बिता कर दूसरे दिन घर लौटे, उसी दिन से न मालूम क्यों उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ था। इस समय उसे निश्चय हो गया कि वह सन्देह अमूलक न था। उसका धैर्य और संकोच एक साथ जाता रहा। वह उन्मादिनी की भाँति क्रोध से लाल लाल आँखें किये, आँचल खोले, सिर के बाल बिखराये राजसभा में आई। उसकी विचित्र दशा देख राजा और राजसभासद्‌गण चकित हुए। द्वारपाल ने डर कर रास्ता छोड़ दिया। वह एकाएक सिंहासन के पास खड़ी हो बड़े कठोर स्वर में गरज कर ध्रुव से बोली, "तू कौन है?"

ध्रुव—"मैं ध्रुव हूँ?"

सुरुचि—कौन ध्रुव? तेरे माता-पिता कौन हैं?

ध्रुव ने राजा की ओर उँगली दिखा कर कहा—"देखो, यही मेरे पिता हैं। मेरी माता का नाम सुनीति है।"

सुरुचि—"भिखारिन का बेटा होकर तुझे सिंहासन पर बैठने का मनोरथ क्यों हुआ?"

सुरुचि के इस वाक्य से व्यथित होकर ध्रुव ने कहा—"मेरे पिता ने मुझको सिंहासन पर बिठाया है। आप कौन हैं?"

"मैं रानी हूँ। यह धन-सम्पत्ति राजपाट सब मेरा है।"

ध्रुव सुरुचि के क्रोध और गर्व से भरे हुए मुँह की ओर देख कर बोला—"आप रानी और मेरी माँ भिखारिन?"

ध्रुव के इस सरल प्रश्न ने सुरुचि को मर्मान्तिक पीड़ा दी। वह इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर बोली—"यह सिंहासन मेरे बेटे का है, तू इस पर क्यों बैठा?"

ध्रुव—"यह सिंहासन मेरे पिता का है, उन्हीं ने मुझको इस पर बिठाया है।"

सुरुचि राजा की ओर रिस-भरी चितवन से देख कर बोली—"महाराज! धिक्कार है आपको! अब तक आप उस मायाविनी के मोह-जाल में फसे ही हैं! मुझ पर और पुत्र पर आपका केवल बनावटी स्नेह है। नहीं तो जिस स्त्री को आपने निर्वासित कर दिया, उसके पुत्र को सिंहासन पर क्यों बिठाया?" राजा को इस प्रकार फटकार कर उसने ध्रुव की ओर देख कर कहा—"मूर्ख बालक! यदि तुझे अपमान का डर हो तो फिर कभी इस सिंहासन पर बैठने का साहस न कर। तू राजा का बेटा होने पर भी मेरा बेटा नहीं है। एक दुर्भगा स्त्री के गर्भ से तेरा जन्म हुआ है। यदि तू मेरे गर्भ से जन्म लेता तो तुझे सिंहासन पर बैठने का अवश्य अधिकार होता। तुझ वन-वासी के योग्य यह सिंहासन नहीं।" यह कह कर सुरुचि ने बरजोरी ध्रुव को सिंहासन से उतारने के लिए हाथ बढ़ाया। किन्तु ध्रुव उसके मन का भाव समझ कर पहले ही सिंहासन से उतर गया। सुरुचि के इस बुरे व्यवहार से ध्रुव का हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। बड़े कष्ट से उसने आँख के आँसू रोक कर राजा से कहा—"आप, राजाधिराज हैं। आशीर्वाद दें, जिससे मैं राज-पद से भी कोई उच्चतम पद प्राप्त कर सकूँ। आप ऐसा ही आशीर्वाद दीजिए जिसमें यह सिंहासन मेरे योग्य न हो।"

ध्रुव अब वहाँ क्षण भर भी न रह सका। उसी घड़ी वहाँ से चल दिया। उसके साथी ऋषिकुमार भी रोष-भरी दृष्टि से सुरुचि की ओर देखते हुए ध्रुव के पीछे चले। सुरुचि के व्यवहार से राजा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे, ऋषि-बालकों के जाने के साथ साथ उन्होंने सभा विसर्जन की।

इधर ध्रुव के एकाएक अन्तर्हित होने से सुनीति अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। पीछे जब उसने सुना कि ध्रुव अन्यान्य ऋषि-बालकों के साथ यमुना के किनारे से पूरब की ओर गया है तब वह मन ही मन सोचने लगी कि, ध्रुव ज़रूर ही राजधानी को गया है। लड़का इतनी दूर पैदल कैसे जायगा, राजा उसे देख कर क्या कहेंगे, दुष्टात्मा सुरुचि उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी, इस चिन्ता से सुनीति का चित्त बड़ा ही व्यग्र था। वह ध्रुव के आने की बाट जोह रही थी। ध्रुव के आने पर वह उसका उदास चेहरा देखते ही समझ गई कि उसके मन में गहरी चोट लगी है। उसने उसे बहुत सान्त्वना दी, परन्तु ध्रुव का मन किसी तरह शान्त न हुआ। राजसभा में वह लोकलज्जा से मन के क्लेश को रोके हुए था, किन्तु माता के निकट वह अपने धैर्य की रक्षा न कर सका। वह आर्तस्वर से रोने लगा। उसका रोना देख सुनीति के हृदय में बड़ा कष्ट हुआ। उसने उद्विग्न होकर ध्रुव से पूछा—"तुम इस तरह अधीर होकर क्यों रोते हो? क्या तुम्हारे पिता ने तुमसे कुछ कहा है? या तुम्हारा तिरस्कार किया है?"

ध्रुव—"नहीं माँ! उन्होंने बड़े प्यार से मुझे गोद में लेकर सिंहासन पर बिठाया। किन्तु उसी समय एक स्त्री न मालूम कहाँ से एकाएक वहाँ आ पहुँची। उसके बाल बिखरे थे, आँचल

का कपड़ा धरती पर गिरा था। उसकी आँखों से मानो आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसने गरज कर मुझसे कहा—"तू भिखारिन का बेटा होकर क्यों सिंहासन पर बैठा है?" मैंने कहा, "पिता ने मुझको बिठाया है।" यह सुन कर उसने कितना ही मुझसे कहा, वह आपसे क्या कहूँ? वह मेरे पिता को धिक्कारने लगी। तुमको उसने दुर्भगा कहा। पश्चात् उसने ज़बरदस्ती मुझको सिंहासन से उतार देने की चेष्टा की, परन्तु मैं अपमान के भय से पहले ही उतर गया। माँ! वह कौन थी?" सुनीति सब समझ गई, बोली, "वह तुम्हारी सौतेली माँ थी।"

ध्रुव—"सौतेली माँ क्या?"

सुनीति—"तुम्हारे पिता की दूसरी पत्नी। तुम्हारे पिता ने जिस तरह मेरे साथ ब्याह किया था उसी तरह उसके साथ भी ब्याह किया है।"

ध्रुव—"माँ! तो वह रानी और तुम भिखारिन क्यों?"

सुनीति—"यह मेरे कर्म का फल है। बेटा! क्या तुमने अपनी विमाता से कुछ कहा था?"

ध्रुव—"नहीं माँ! मैंने उनसे कुछ न कहा। मैंने केवल पिता से कहा था—पिताजी! आप राजाधिराज हैं। आप आशीर्वाद दीजिए; जिसमें मैं राजपद से भी कोई ऊँचा पद प्राप्त कर सकूँ।"

सुनीति ने ध्रुव को गोद में लेकर उसका मुँह चूमा और कहा "बेटा ध्रुव! भगवान् तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे। तुम उन्हें प्रेम से पुकारो।"

ध्रुव—"माँ, मैं उन्हें क्या कह कर पुकारूँ?"

सुनीति—"तुम, उन्हें यह कह कर पुकारना—भक्तवत्सल नारायण, दीनबन्धु! आओ।"

ध्रुव—"मेरे पुकारने से वे सुनेंगे?"

सुनीति—"क्यों नहीं सुनेंगे।"

ध्रुव—"वे कहाँ हैं?"

सुनीति—"वे इस आकाश में हैं, वायु में हैं, जल में, थल में, मेरे, तुम्हारे भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं। तुम प्रेम से पुकारोगे तो वे अवश्य दर्शन देंगे।"

ध्रुव—"माँ, तो मैं चला। तुम मेरे लिए कुछ चिन्ता मत करो। जब तक मुझे उनका दर्शन न होगा तब तक मैं न लौटूँगा।"

सुनीति—"तुम कहाँ जाओगे? तुम यहीं मेरे पास बैठकर दयानिधान भगवान् को पुकारो। तुम बालक हो, मैं तुमको अभी अकेले घने जङ्गल में न जाने दूँगी।"

ध्रुव—"नहीं, माँ, मैं न मानूँगा। जहाँ मुझे कोई न देखेगा, मैं वहीं बैठकर अपने भगवान् को पुकारूँगा। तुम कहती हो, वे घट घट में विराजमान हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ वे न हों, तब तुम्हें डर क्या?"

सुनीति ने ध्रुव को कितना ही समझाया बुझाया, जब वह किसी तरह उसके मन को न फेर सकी तब उसने अपने हाथ से वैष्णव के भेष में सँवारा। उसके लम्बे बालों को समेट कर जूड़ा बाँध दिया; वस्त्र खोलकर वल्कल पहना दिया, कण्ठ में तुलसी की माला पहना दी, उसके ललाट में गोपीचन्दन का

तिलक कर दिया। इसके अनन्तर उसका मुँह चूम कर हाथ जोड़ रोते रोते बोली--

"भक्तवत्सल, भगवान्! ध्रुव इतने दिन मेरा था। आज से वह आपका हुआ। आप उसकी रक्षा करें।"

ध्रुव माता के चरण की धूल सिर पर डाल कर विदा हुआ।

अत्रि मुनि के तपोवन से दूर, घने जङ्गल में, ध्रुव ने आश्रम बनाया। आश्रम नाम-मात्र का था। कुटी या झोंपड़ा कुछ न था। एक बहुत पुराना बड़ का पेड़ था, उसके नीचे एक चिकना पत्थर था, उसी पर ध्रुव का सोना, बैठना और भगवान् का भजन आदि करना होता था। लड़का तपस्या की विधि कुछ न जानता था। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान आदि कैसे किया जाता है, यह भी वह नहीं जानता था। माता ने जिस महामन्त्र की शिक्षा दी थी, ध्रुव दिन-रात वही जपा करता था। वही मन्त्र ध्रुव के लिए जप, तप, पाठ, पूजा आदि सब कुछ था। माँ ने कहा था, "भगवान् सबमें विद्यमान हैं" इसलिए ध्रुव तरु-लता, पशु-पक्षी आदि जिसे देखता था, उसी से कहता था--"क्या तुम्हीं मेरे कमलनयन हरि हो?" प्रेम की महिमा ही ऐसी है, क्या चेतन क्या अचेतन सभी उसके द्वारा वश में होते हैं। ध्रुव के प्रेमगुण से बाघ, भालू अपनी हिंसात्मक वृत्ति छोड़कर शान्त भाव से रहने लगे। अचेतन वृक्ष और लतायें असमय में फूलने फलने लगीं। कठोर पत्थर को छेद कर निर्मल जल का स्रोत बहने लगा। ध्रुव दिन-रात केवल यही पुकारता, "कमलनयन, नारायण! कहाँ हो? आओ। माँ ने ध्रुव से कहा था,

"अच्छी तरह पुकारने से वे अवश्य आवेंगे।" ध्रुव सोचता था, "मैं इतना पुकारता हूँ, तो भी मेरे भगवान् क्यों नहीं आते?"

इसी तरह बहुत दिन बीते। एक दिन ध्रुव ने देखा, "एक भव्य मूर्ति पुरुष उसके पास आ रहे हैं। उनके सिर का बाल बिलकुल सफ़ेद है, लम्बी सफ़ेद दाढ़ी ढोड़ी तक लटक रही है। श्वेत वस्त्र पहने हैं। श्वेत पुष्प की माला कण्ठ में सुशोभित है। मुख प्रसन्न है। होठों पर मुस्कुराहट छाई है। मीठे स्वर में बार बार भगवान् का नाम ले रहे हैं। ध्रुव ने सोचा, "यही मेरे दीनबन्धु भगवान् हैं। जिनको मैं इतने दिन से पुकार रहा था, वे मुझको दर्शन देने के लिए आ रहे हैं।" ध्रुव दौड़ कर गया और अपनी दोनों छोटी बाहों से लिपट कर उनसे पूछा—"क्या आप ही मेरे कमलनयन भगवान् हैं?"

आगन्तुक ध्रुव को गोद में लेकर बोले—"मैं तुम्हारे भगवान् का दासानुदास हूँ। मेरा नाम नारद है। उन्होंने तुम्हारी ख़बर लेने के लिए मुझको भेजा है।"

ध्रुव—"क्या उन्होंने मेरी पुकार सुनी है?"

नारद—"जिस दिन से तुम उन्हें पुकारते हो उसी दिन से वे तुम्हारी पुकार सुन रहे हैं।"

ध्रुव—"तो वे आते क्यों नहीं?"

नारद—"मैं लौट कर उनके पास गया कि वे आये।"

यह सुन कर ध्रुव की आँखों से आनन्दाश्रु बह चला। नारद ने पूछा—"तुम किस तरह उन्हें पुकारते हो, एक बार मुझको सुनाओ।"

ध्रुव ने बड़े प्रेम से पुकारा—"कमलनयन हरे! कहाँ हो, आँओ।"

नारद—"और कुछ नहीं कहते ?"

ध्रुव—"नहीं, माँ ने इतना ही सिखाया है।"

नारद—"अच्छा, अब मैं जिस भाँति पुकारने को कहता हूँ पुकारो। पुकारो, कमलनयन, भगवान्! कहाँ हो, आओ, मुझ पर दया करो।"

ध्रुव—"कमलनयन भगवान्! कहाँ हो, आओ, मुझ पर दया करो।"

नारद ने कहा—"कहो, कमलनयन, हरे! कहाँ हो, आओ, मेरी माता पर दया करो।"

ध्रुव—"कमलनयन, हरे! कहाँ हो ? आओ मेरी माता पर दया करो।"

नारद—"कहो, भगवान्! मेरे पिता पर दया करो।"

ध्रुव—"भगवान्! मेरे पिता पर दया करो।"

नारद—"कहो, कमलनयन, करुणाकर! कहाँ हो, आकर दर्शन दो, मेरी सौतेली माँ पर दया करो।"

ध्रुव चुप हो रहा। नारद ने कहा—"ध्रुव, चुप क्यों हो रहे ? कहो, मेरी सौतेली माँ पर दया करो।"

ध्रुव ने कहा—"उसने मुझको बहुत दुःख दिया है।"

नारद—"इसीलिए तुमको उसके निमित्त भगवान् से यह बात कहनी होगी।"

ध्रुव फिर चुप हो रहा।

नारद बोले—"तो मैं जाता हूँ। क्या तुम नहीं जानते कि भक्त का कष्ट वे अपना ही कष्ट समझते हैं ? सौतेली माँ के कठोर वचन से जो तुमने कष्ट पाया है; उसकी अपेक्षा तुम्हारे कमल-

नयन ने अधिक कष्ट पाया है। तो भी वे तुम्हारी सौतेली माँ की भलाई चाहते हैं, तुम उसकी भलाई नहीं चाहते ?"

ध्रुव कुछ देर नारद के मुँह की ओर देखता रहा, तिसके बाद उसने पूछा—"क्या कहा आपने ? मेरे कमलनयन मेरी सौतेली माँ का हित चाहते हैं ? तो मैं भी हित चाहूँगा" कह कर उसने कहा—"मेरे कमलनयन, प्रभो ! कहाँ हो, आओ, मेरी सौतेली माँ पर दया करो।"

इतना कहते ही ध्रुव ने देखा, नारद मुनि अन्तर्धान हो गये। एकाएक अपूर्व प्रकाश से समूचा जङ्गल देदीप्यमान हो उठा। चारों ओर से दिव्य सुगन्ध आने और अश्रुत-पूर्व मधुर सङ्गीत ध्रुव के कान में अलौकिक सुख उपजाने लगा। जो मूर्ति इतने दिन से ध्रुव के मन में विहार कर रही थी, वह आज उसकी आँखों के सामने प्रकट हुई। भक्त के साथ भगवान् का मिलन कैसा आनन्दप्रद होता है, इसका वर्णन शब्दों-द्वारा नहीं हो सकता। जिसने जन्म पाकर कभी इस सुख का आस्वादन किया है, वही इसका अनुभव कर सकते हैं।

कमलनयन प्रभु का दर्शन पाकर ध्रुव कृतार्थ हुए और उनके अविच्छेद दर्शन की शक्ति लाभ कर फिर अपनी माता के आश्रम को लौट आये।

सुनीति गोद के बालक ध्रुव को पाकर बहुत प्रसन्न हुई। मानो हाथ की खोई हुई निधि फिर उसे मिल गई। वह आनन्द से विह्वल हो भगवान् को धन्यवाद देने लगी। अत्रि मुनि, उनकी पत्नी, और अन्यान्य ऋषि तथा उनकी पत्नियों ने सुनीति की कुटी में प्रवेश कर ध्रुव को बड़े प्यार से गोद में बिठाया और आशीर्वाद दिया।

महर्षि अत्रि ने कहा—"इतने दिन के अनन्तर मेरा आश्रम यथार्थ में पुण्यस्थान हुआ। भक्तचूड़ामणि ध्रुव को छाती से लगा कर आज मैं कृतार्थ हुआ।"

ध्रुव ने जिस समय अपनी सौतेली माँ के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी, उसी समय से सुरुचि की चित्तवृत्ति बदल गई। वह ध्रुव को गोद में लेने और सुनीति से अपने अपराध की क्षमा-प्रार्थना करने के लिए व्यग्र होकर अतिशीघ्र राजा उत्तानपाद के साथ महर्षि अत्रि के आश्रम को गई। वहाँ जा सुनीति की कुटी में प्रवेश कर वह उसके पैरों पर गिर कर बार बार क्षमा के लिए प्रार्थना करके कहने लगी—"बहन, मैं उन्मादिनी हो गई थी, मेरे सिर पर स्वार्थरूपी भूत सवार हो गया था, मेरा अपराध क्षमा करो, नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगी।"

सुनीति ने कहा—"बहन, तुम धन्य हो, तुम्हारी कठोर वाणी ने अमृत का काम किया। तुमसे तिरस्कृत होने ही के कारण ध्रुव ने कमलनयन हरि का दर्शन पाया। तुम्हारा एक भी अपराध मेरे मन में स्थान नहीं पा सकता। आओ, हम तुम दोनों मिल कर पूर्ववत् पति की सेवा करके नारी-जन्म को सफल करें।"

सुनीति के शेष जीवन का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। वह अत्रि मुनि और उनकी पत्नी तथा अन्यान्य ऋषिपत्नियों से मिल कर सबसे आशीर्वाद ले पति, पुत्र के साथ राजधानी को लौट गई। ध्रुव की माता का जैसा सम्मान होना चाहिए, उस सम्मान को पाकर वह अपने जीवन के शेष समय को सुखपूर्वक बिताने लगी।

तीसरा आख्यान

गान्धारी

सिन्धु नद के पश्चिम किनारे जो ज़मीन क्रमशः ऊँची होकर उत्तर-पश्चिम की ओर श्वेत पर्वत से जा मिली है, पूर्वकाल में उसका नाम गान्धार देश था। इसी गान्धार शब्द से इस प्रदेश का कुछ अंश अब तक 'कन्दहार' नाम से मशहूर है। हम जिस समय का वृत्तान्त लिख रहे हैं, उस समय गान्धार देश का राजा सुबल था।

गान्धार देश प्राकृतिक विलक्षण शोभा से भरा था। कहीं कोसों तक मैदान, कहीं दुर्गम पहाड़ी भूमि, कहीं सघन वन, और कहीं उच्च गिरिशिखर इस देश की शोभा को बढ़ा रहे थे। जाड़े के मौसम में पहाड़ के शृङ्गसमूह बर्फ़ से ढँक जाने के कारण रजत पहाड़ की भाँति सुन्दर देख पड़ते थे। वसन्त ऋतु में वे भाँति भाँति के तृण, लता और पौधों से भूषित होकर श्यामल शोभा से दर्शकों के नयन तृप्त करते थे। गरमी के दिनों में सारा प्रदेश अनार के फूल सा लाल हो जाता था। बरसात में गृहस्थों के घर, आँगन, वन उपवन आदि सभी स्थान, गुच्छ के गुच्छ द्राक्ष के फलों से भर जाते थे। गान्धार देश के खेतों में पुष्टि-कारक सुस्वादु अन्न उपजते थे, बागों में भाँति भाँति के अमृत से मीठे मेवे फलते थे, नदी की बालुओं में सोने के कण पाये जाते

थे। देखने से यही जान पड़ता था जैसे लक्ष्मी ने इस देश को अपना क्रीड़ा-स्थल बनाया है।

राजा सुबल के एक बेटा था और एक बेटी। बेटे का नाम शकुनि, और बेटी का नाम गान्धारी था। इतने अच्छे अच्छे नामों के रहते राजकुमार का नाम शकुनि क्यों रक्खा गया, यह बतलाना कठिन है। जान पड़ता है, उसका स्वरूप और स्वभाव कुछ कुछ गिद्ध से मिलता था इसीलिए लोग उसे शकुनि नाम से पुकारने लगे होंगे। स्वरूप उसका जैसा कुछ रहा हो परन्तु उसके स्वभाव में अवश्य गिद्ध का लक्षण था। गिद्ध की भाँति उसकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण थी। गिद्ध जैसे दृष्टिपथवर्ती वस्तुओं में मुर्दों को छोड़ और वस्तु में विशेष प्रीति का अनुभव नहीं करता, राजकुमार शकुनि भी वैसे ही सांसारिक अनेक विषयों में लोगों के बुरे के सिवा और किसी कार्य में विशेष सुख का अनुभव नहीं करता था। बालपन से ही उसकी कपट-बुद्धि प्रकाशित होने लगी थी। किन्तु राजा सुबल के वही एक-मात्र पुत्र था इसलिए कोई उससे कुछ न कहता था, बल्कि खुशामदी लोग कहा करते थे कि—राजकुमार जैसे तीक्ष्णबुद्धि हैं, उससे जान पड़ता है, कि युवावस्था में वे एक असाधारण राजनीतिज्ञ होंगे।

राजकुमारी स्वरूप और स्वभाव में भाई से बिलकुल जुदी थी। गान्धार देश की स्त्रियाँ उस समय अनुपम सौन्दर्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। किन्तु गान्धारी उन सबों में एक थी। उसके आगे बड़ी बड़ी रूपवती स्त्रियों का रङ्ग रूप फीका मालूम होता था। उसको देखने से यही जान पड़ता था जैसे स्वर्ग से कोई देवकन्या भूमण्डल में उतर आई है। बाहरी सौन्दर्य की अपेक्षा

उसका मानसिक सौन्दर्य और भी प्रशंसनीय था। वह गुरुजनों के प्रति भक्तिमती, देवता ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धावती और आश्रित जनों के प्रति दयावती थी। वह अपनी सुशीलता के कारण नगर-निवासियों के विशेष आदर की पात्री बनी थी। सब गुणों से विशेष गुण उसमें यह था कि वह माता-पिता के आदेश को सर्वोपरि मानती थी।

राजकुमार और राजकुमारी दोनों जब क्रमशः युवत्व को प्राप्त हुए तब राजा सुबल पुत्र को राज्याभिषेक कर कन्या के लिए उपयुक्त वर खोजने में प्रवृत्त हुए। राजकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुन कर देशदेशान्तर के भूपगण दूत के द्वारा गान्धार-राज के पास ब्याह का पैग़ाम भेजने लगे। एक तो राजकुमारी अनुपम सुन्दरी थी, दूसरे वह महादेव की आराधना से बहुपुत्र-वती होने का वरदान पा चुकी थी। इसलिए कितने ही पुत्रा-भिलाषी राजा और राजकुमार उसके साथ ब्याह करना चाहते थे। उन लोगों के भेजे हुए दूत बराबर महाराज सुबल की राज-धानी में आते जाते थे। किन्तु उन प्रार्थी राजगणों में सबसे योग्य कौन हैं, इसका निर्णय न कर सकने के कारण सुबल कहीं कन्या का सम्बन्ध स्थिर नहीं कर सकते थे।

योंही कुछ दिन बीतने पर ख़बर आई कि हस्तिनापुर से कुरुकुल के गौरवस्वरूप भीष्म का भेजा हुआ दूत राजकुमारी के ब्याह का पैग़ाम लेकर आया है। राजा ने दूत का यथोचित सत्कार करने की आज्ञा दे, युवराज शकुनि और प्रधान मन्त्री के सथ सभागृह में प्रवेश किया। कुछ ही देर में दूत और उसके साथी लोग राजा के समीप उपस्थित हुए। बहुतेरे भारवाहक भाँति भाँति के बहुमूल्य उपहार लेकर दूत के साथ आये थे।

कोई रत्नजटित सोने के अनेक भूषण, कोई जड़ाऊ रेशमी कपड़े, कोई इत्र गुलाब, चन्दन और कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ, कोई राजाओं के व्यवहार योग्य बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र लाये थे। नाना प्रकार के पकवानों का भी अभाव न था। दूत ने उपहार की सब वस्तुओं को यथास्थान रखकर अभिवादनपूर्वक राजा से सविनय कहा--महाराज! कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्म ने आपको नमस्कार करके कुशल पूछा है। उन्होंने सुना है कि आपके एक विवाह-योग्य कन्या है। उन्होंने अपने भतीजे धृतराष्ट्र के लिए वह राजकुमारी माँगी है। उन्होंने कहा है कि इस सम्बन्ध से दोनों राजवंशों की मानरक्षा होगी और वंशक्रमागत प्रीति और भी दृढ़ होगी। अब श्रीमान् की जैसी इच्छा हो।

राजा ने कहा---हम तुम्हारी मीठी बातों से बहुत प्रसन्न हुए। कुरुवंशी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना निःसन्देह प्रतिष्ठा की बात है। किन्तु इस विषय में सब बातों का विना विचार किये सहसा उत्तर दे देना ठीक नहीं। तुम लोग बहुत दूर से आने के कारण थके हुए हो, आज विश्राम करो। कल हम तुम्हारे प्रश्न का उचित उत्तर देंगे।

दूत राजा को प्रणाम करके अपने साथियों के सहित बाहर गया। तब राजा ने वृद्ध मन्त्री से पूछा--इस विषय में आपकी क्या राय होती है?

मन्त्री—महाराज! इस विषय में हमारी राय युक्तिसंगत न होगी। महाराज जो विचार करेंगे वही ठीक होगा। महारानी और युवराज के साथ परामर्श करके जो कर्तव्य हो महाराज स्थिर करें।

शकुनि—जिन बातों का सम्बन्ध राजनीति से है, और जिस विषय पर राज्य का हिताहित निर्भर है, अन्तःपुर में उसकी आलोचना उचित नहीं। उसका विचार यहीं होना ठीक है।

मन्त्री—इस विषय के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

शकुनि—समझ में आवेगा भी नहीं। यदि आपमें यह शक्ति रहती तो गान्धार-राज्य की कुछ और ही अवस्था होती।

मन्त्री—युवराज! मैं बूढ़ा हुआ, बुढ़ापे के कारण मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं, बुद्धि मन्द हो गई है, इसलिए मेरी भूल क्षमा करें। राजकुमारी की इस विवाह-वार्ता के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह आप कहिए।

शकुनि—सो पीछे कहूँगा। मेरा और मेरी माता का अभिप्राय महाराज जानेहींगे। आप अपना अभिप्राय कह सुनाइए।

राजा ने भी कहा—"हाँ, आप कहने में कुछ संकोच न करें। आप वंशपरम्परा से मेरे शुभ-चिन्तक हैं। जो आप अच्छा समझें वह निर्भय होकर कहें।

मन्त्री—महाराज! मैं क्या निवेदन करूँ? कुरुवंशी के साथ सम्बन्ध करने में कोई हानि नहीं। परन्तु राजकुमार धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं। उनके साथ लक्ष्मीस्वरूपा राजकुमारी का ब्याह करना उचित है या नहीं, यह स्वयं महाराज विचार करें।

राजा—धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं?

मन्त्री—हाँ महाराज! जन्मान्ध हैं?

राजा—तो यह ब्याह कैसे होगा? शकुनि! तुम क्या कहते हो?

शकुनि—मैं अपनी राय पीछे कहूँगा। पहले मैं मन्त्री महाशय से कई बातें पूछना चाहता हूँ। अच्छा कहिए तो आप कुम्भपर्व में त्रिवेणी-स्नान करने प्रयाग गये थे?

मन्त्री—हाँ।

शकुनि—आपको स्मरण है, उस समय कितने राजकुमार वहाँ आये थे?

मन्त्री—हज़ारों।

शकुनि—उन राजकुमारों में धृतराष्ट्र के समान कोई सुन्दर था?

मन्त्री—नहीं। रूप में वे साक्षात् कार्त्तिकेय के समान हैं।

शकुनि—बल-पराक्रम में वे कैसे हैं?

मन्त्री—बड़े बड़े मत्त हाथी भी उनके सामने सिर नहीं उठा सकते। उनके बल के सम्बन्ध में जो मैंने अपनी आँख से देखा है, वह आपसे निवेदन करता हूँ। पर्व के दिन बड़े तड़के कामरूप के महाराज का एक बड़ा विशाल हाथी पागल होकर महावत को मार यात्रियों को रौंदता हुआ संगम की ओर दौड़ा जा रहा था। उसे देख जनसमूह में भारी कोलाहल हुआ। चारों ओर हलचल मच गई। सभी लोग प्राणभय से जिधर-तिधर भागने लगे। इधर मत्त हाथी सामने में जो पड़ता उसे पैरों से कुचलता तीर्थवासियों की कुटी को सूँड़ से तोड़ता हुआ क्रमशः आगे बढ़ने लगा। राजकुमार उस समय ख़ेमे के भीतर थे। वे यह ख़बर पाते ही बाहर आकर खड़े हुए। उनके इष्ट मित्र नौकरों ने उन्हें बहुत रोका, पर उन्होंने किसी की बात पर ध्यान न दिया। हाथी उन्हें रास्ते में खड़े देख, सजीव पहाड़ की भाँति, बड़े वेग

से उनकी ओर दौड़ा। "राजकुमार मरे, राजकुमार मरे" यह वाक्य उच्चारित होते न होते हाथी उनके पास जा पहुँचा और सूँड़ से लपेटकर उन्हें दे मारना चाहा, राजकुमार उसके घंटानाद से उसको आते हुए जानकर पहले ही से सावधान हो खड़े थे। उन्होंने उसके आक्रमण करने के पूर्व ही एक बड़े मोटे लोहे के डंडे से उसे इस ज़ोर से मारा कि वह पाँव में सख़्त चोट खाकर तुरन्त धरती पर गिर पड़ा। यह देख कर तीर्थवासी साधु-संन्यासीगण आकर आनन्द से पुलकित होकर राजकुमार को आशीर्वाद देने लगे। महाराज! मैं सच कहता हूँ, राजकुमार के तुल्य बलवान् विरला ही कोई होगा।

शकुनि—उनका शास्त्रज्ञान कैसा है?

मन्त्री—सुना है, वेदवेदाङ्ग सब उन्हें कण्ठस्थ हैं।

शकुनि—उनके वंश-गौरव के विषय में आप कुछ जानते हैं?

मन्त्री—चन्द्रवंश के गौरव के सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है। राजा ययाति, पुरु, दुष्यन्त और कुरु आदि राजर्षियों ने इसी वंश में जन्म ग्रहण कर इसकी मर्यादा बढ़ाई है।

शकुनि—मन्त्रिवर! तो इनमें दोष क्या?

मन्त्री—वे जन्मान्ध हैं।

शकुनि—तब तो "विद्यैव ज्ञानिनां चक्षुः" यह वाक्य आपके विचार से व्यर्थ होता है? ज्ञानी पुरुषों को चर्मचक्षु रहे चाहे न रहे, इससे क्या?

मन्त्री—मेरी अल्प बुद्धि में जो बात अच्छी जान पड़ी वह मैंने कही। कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय का भार आप लोगों के ऊपर निर्भर है।

राजा—हाय ! हाय ! इतने दिनों के बाद कुल, शील, रूप, गुण में यदि एक योग्य वर मिला भी तो नेत्रहीन ! शकुनि ! मैं ऐसी रूपवती कन्या का ब्याह अन्धे वर के साथ कैसे करूँगा ?

शकुनि—महाराज ! राजधर्म बड़ा कठिन है । उसमें माया-ममता की अपेक्षा भविष्यत् मङ्गल के लिए चित्त की दृढ़ता ही अधिक प्रयोजनीय है । मन्त्री महोदय हमसे पूछते थे, इस विवाह के साथ राजनीति का सम्बन्ध क्या है ? अच्छा, हम समझाये देते हैं । सुनिए—

हम लोगों के इस गान्धार देश पर बहुतों की दृष्टि गड़ी है । एक तरफ़ शक और वाह्लीक आदि असभ्य जाति इस अन्न धन से सम्पन्न देश को लूटना चाहती है, दूसरी तरफ़ पञ्चनदवासी राजगण मांसलोलुप बिल्ली की भाँति इसे झपटने के लिए घात लगाये बैठे हैं । इस अवस्था में किसी प्रबल राजवंश के साथ सम्बन्ध जोड़ना हम लोगों का नितान्त कर्तव्य है । ऐश्वर्य और पराक्रम में कुरुवंश अभी भारत के समस्त भूपगणों से बढ़ा-चढ़ा है । उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने से क्या आर्य, क्या अनार्य, कोई शत्रु हम लोगों के अनिष्ट करने का साहस नहीं कर सकेगा । राजकुमारी को धृतराष्ट्र के साथ ब्याह देने से हम लोग समरविजयी वीर भीष्म को अपने पक्ष में ला सकेंगे । अन्यथा उनके क्रोध-भाजन बनेंगे । यह साधारण बात नहीं है । महाराज ! आप अपने राज्य के कल्याणार्थ इस सम्बन्ध की सम्मति दीजिए, राजधर्म के रक्षार्थ अयोध्याधीश महाराज रामचन्द्र ने धर्मपत्नी को निर्वासित कर दिया था । क्या यह बात आपसे छिपी है ?

राजा—वत्स ! तुम्हारा कहना ठीक है । किन्तु तुम्हारी माँ

तो राजधर्म्म नहीं जानतीं वे क्या कहेंगी। या गान्धारी ही क्या सोचेगी।

शकुनि—महाराज! आपकी आज्ञा का भङ्ग कौन करेगा? माँ अपनी ज़िन्दगी में कभी आपके प्रतिकूल बात बोल ही नहीं सकती। बहन गान्धारी का तो कुछ कहना ही नहीं! वह तो आपके वचन का देववाणी से भी बढ़ कर आदर करती है।

राजा—सच है। किन्तु गान्धारी सी कन्या को अन्धे वर के साथ ब्याह देना क्या उचित होगा?

शकुनि—महाराज! सभी लोगों के मुँह से यही एक बात "अन्ध, अन्ध" सुनाई देती है। सच पूछिए तो नेत्र मनुष्य का एक भारी शत्रु है। नेत्र ही रूप की लालसा उत्पन्न करता है। इसी रूप-जाल में फँस कर कितने ही राजकुमार पतिप्राणा पत्नी को तज कर दूसरा ब्याह करते हैं। धृतराष्ट्र के साथ ब्याह होने से राजकुमारी को सौत की आशङ्का न रहेगी। मैं बहन गान्धारी का स्वभाव भली भाँति जानता हूँ। पति अन्धा या लूला लँगड़ा ही क्यों न होगा, वह उसे देवता जान कर सेवा करेगी, पति-सेवा करके वह आप सुखी होगी और पति को भी सुखी करेगी।

राजा—"बेटा शकुनि! देखता हूँ, तुम बड़े दीर्घदर्शी हो। भगवान् तुम्हें चिरंजीवी करें। जब तुम कहते हो कि इस सम्बन्ध से राज्य का कुशल होगा और गान्धारी के मन में भी दुःख न होगा तब इसमें मेरी असम्मति नहीं। मैं रानी को अपना अभिप्राय सूचित करनेके लिए अन्तःपुर जाता हूँ। तुम मन्त्री महाशय के साथ परामर्श करके उपयुक्त प्रत्युपहार की आयोजना करो। मैं कल ही हस्तिनापुर दूत भेजूँगा। जब तुम्हें पसन्द है तो

यही सम्बन्ध स्थिर हुआ।" यह कह कर राजा अन्तःपुर गये। किन्तु उनके अन्तःपुर जाने के पूर्व ही राजकुमारी के व्याह की ख़बर वहाँ पहुँच गई थी और इस बात को लेकर महल के भीतर भारी आन्दोलन हो रहा था। कोई कह रही थी, राजा ने यह क्या किया, ऐसी सोने की प्रतिमा को अन्धे के हाथ दिया! कोई बोली—"यह तो जानी हुई बात है, जब वैसे वैसे सुन्दर वर फिर गये, कोई राजा और रानी को पसन्द न आया तब अन्त में ऐसा होना ही चाहिए।" एक ने कहा—"और जो कुछ हो, वंश बहुत उत्तम है।" दूसरी स्त्री बोली—"यही कैसे कहूँ? बाप के मरने के बहुत दिन बाद तो इस लड़के का जन्म हुआ था। जो कुछ हो, हम सबों को इससे क्या मतलब? जिनकी लड़की है, वे यदि उसे पानी में फेंक दें तो हम सब क्या करेंगी?"

धीरे धीरे यह बात राजकुमारी गान्धारी के कानों तक जा पहुँची। उसकी एक प्रिय सखी उदास मुँह किये उसके पास आकर बोली—प्यारी सखी! एक बात सुन कर मन में बड़ा दुःख हुआ है। वही तुमसे कहने आई हूँ।

गान्धारी—सखी! तुम्हें बहुत उदास देखती हूँ, क्या सुन कर आई हो, कहो।

सखी—तुम्हारे व्याह की बातचीत पक्की हो गई।

गान्धारी ने हँस कर कहा—हुई तो हुई, इसके लिए तुम इतनी उदास क्यों हो? क्या तुम चाहती हो कि मैं बुढ़ापे तक कुमारी रह कर तुम्हारे ही पास रहूँ? कहाँ सम्बन्ध स्थिर हुआ है?

सखी—हस्तिनापुर के राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ।

गान्धारी ने मुस्कुरा कर कहा—तुम्हारे साथ न होकर मेरे साथ उनके व्याह की बातचीत हुई है, क्या इसी से तो तुम इतनी उदास नहीं देख पड़तीं? इसके लिए इतना सोच क्यों? तुम तो मेरे सुख-दुःख की संगिनी हो, न हो तो तुम उसमें आधा भाग ले लेना।

सखी—तुम नहीं जानतीं कि विधाता ने तुम्हारे अदृष्ट में क्या लिख दिया है। इसी कारण तुम मुझसे व्यङ्ग करती हो। सुना है, राजकुमार धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं।

सुनते ही राजकुमारी का हृदय काँप उठा, किन्तु चेहरे पर ज़रा भी उदासी का चिह्न दिखाई नहीं दिया। उसने कहा--क्या सचमुच ही बातचीत पक्की हो गई? किसने सम्बन्ध स्थिर किया है?

सखी—स्वयं महाराज ने। सुना है, कल ही राजदूत यह संवाद लेकर हस्तिनापुर जायगा। पहले महाराज की इस विवाह में सम्मति न थी, किन्तु युवराज ने जब उन्हें समझा दिया कि गान्धार राज्य के कल्याणार्थ यह सम्बन्ध ग्राह्य है, शत्रुमण्डली के बीच से गान्धार-राज्य की रक्षा के लिए किसी पराक्रमी राजवंश के साथ सम्बन्ध करना उचित है तब इस पर महाराज ने अन्त में सम्मति दे दी। सब बातें ठीक हो गईं।

गान्धारी—सखी! यदि यही है, तो इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की बात और क्या होगी? गान्धार-राज्य के मङ्गलार्थ विवाह की कौन बात, मैं अपना प्राण तक देने में कभी कुण्ठित नहीं हो सकती।

सखी--तुम नहीं समझती हो, चलो, हम तुम दोनों रानी

के पास चलें । मैं उनसे कहूँगी, इस विवाह में मेरी सखी की राय नहीं होती । तुम्हारी राय न होने से वे कभी सलाह न देंगी । जब उनका विचार न होगा तब महाराज को भी हार कर अपनी राय बदलनी पड़ेगी । तुम ज़रा भी इसमें संकोच न करो । अब भी समय है । चलो, शीघ्र चलो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलती हूँ ।

गान्धारी—सखी ! तुम अबोध की तरह बात करती हो । पिता जब मेरे व्याह की बात स्थिर कर चुके हैं, जब वे मेरे दान का संकल्प कर चुके हैं तब मैं अपने को वाग्दत्ता समझती हूँ । अब मेरे पति अन्ध हों, या बधिर हों, इसमें मेरा क्या हानि-लाभ । देवता की मूर्त्ति मिट्टी की हो या सोने की, भक्तों के निकट दोनों बराबर हैं । भक्त उसमें देवत्व आरोपण करके पूजा करते हैं और मुक्ति पाते हैं । मैं अपने स्वामी में ईश्वरभाव का अधिष्ठान करके उनकी सेवा करूँगी । उसी से मेरा परम कल्याण होगा ।

सखी—धर्मज्ञान से तुम जो कहो, किन्तु अन्धपति को क्या तुम हृदय से प्यार कर सकोगी ?

गान्धारी—"क्यों न कर सकूँगी ? उनकी अङ्गहीनता यदि मेरे मन में खेद उत्पन्न करेगी तो मैं उसका प्रतीकार करूँगी । उनका अन्धापन जिसमें मैं न देख सकूँगी, उसका उपाय मैंने सोच रक्खा है । जिस दिन मैं पिता के मुख से अपने इस व्याह की बात सुनूँगी उसी दिन मैं अपनी आँखों पर कपड़े की पट्टी चढ़ा लूँगी । इससे वे सुन्दर हैं या कुरूप, नेत्रवान् हैं या नेत्रहीन, यह मैं न देख सकूँगी । यदि मेरे स्वामी मुझको बिना देखे मुझ पर प्रेम प्रकाश करके धर्मपत्नी बनावेंगे तो मैं उनको न देख कर उन्हें स्नेहपूर्वक क्यों न पति बनाऊँगी ?

सखी—मैंने तुमसे हार मानी। मैं साधारण मनुष्य हूँ, मनुष्य की तरह बात कहती हूँ। तुम देवी हो, देवी की तरह बात करती हो। भगवान् करे, तुम जो इतने दिन से भगवान् की पूजा करती हो वह सफल हो। तुम दोनों पति-पत्नी में उन्हीं का सा प्रेमभाव उत्पन्न हो। मैं जाती हूँ, महारानी की आज्ञा से मैं तुम्हारे मन का भाव बूझने आई थी।

कुछ दिन के अनन्तर गान्धारी का ब्याह कुरुवंश के राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ हो गया। पिता का वाग्दान होते ही गान्धारी ने कपड़े से अपनी दोनों आँखें बाँध लीं और उसी तरह हस्तिनापुर गई। धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण गान्धारी को न देख सके। गान्धारी भी आँख पर पट्टी बाँध लेने के कारण धृतराष्ट्र को न देख सकी। किन्तु हृदय के नेत्र से दोनों ने दोनों को देखा। दोनों प्रेम के रंग में रँग गये और प्रीतिपूर्वक सांसारिक धर्म का पालन करने लगे।

राजकुमारी की सुशीलता और सद्व्यवहार देख कर पुरवासी लोग सब उसे हृदय से प्यार करने लगे। "पातिव्रत्य धर्म में वह सीता और सावित्री के बराबर थी" उसके पातिव्रत्य का यश देश-देशान्तर में फैल गया।

यथासमय गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन और दुःशासन आदि अनेक पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए। उन लोगों की कथा कहने के पूर्व प्रसंगानुसार हम दो एक बातों का यहाँ उल्लेख करके आगे बढ़ेंगे। लोग कहा करते हैं कि सुमाता के पेट से सुपुत्र ही जन्म लेता है। यह बात सामान्यतः सत्य होने पर भी सब जगह चरितार्थ नहीं होती। पुराण की बात जाने दीजिए। इतिहास ही की बात लीजिए। इन्दौर के होलकर-वंश की प्रसिद्ध रानी

अहिल्याबाई का नाम कौन नहीं जानता। उनकी सी धर्मशीला, और दयावती स्त्री संसार में बहुत कम पैदा हुई हैं। उनके चरित्र के लेखक लिखते हैं, "मनुष्य से लेकर चींटी पर्यन्त सभी जीवों पर उनकी दया रहती थी। वे प्रति दिन साधु-महात्माओं को भोजन देती थीं और पर्व-त्यौहार पर या किसी विशेष उत्सव के दिन कंगालों को अन्नदान देती थीं। अन्नदान के समय वे जाति का विचार न करती थीं। चांडाल और मुसलमान आदि जो कोई भूखा उनके यहाँ आ जाता था उसे अवश्य भोजन देती थीं। जाड़े में दीन दुखियों और बूढ़ों को जाड़े का कपड़ा देती थीं। गरमी के दिनों में प्यासे पथिकजनों को पानी पिलाने के लिए राजमार्ग के किनारे जगह जगह पर कितने ही लोगों को नियुक्त करती थीं। वे कभी कभी अपनी राजधानी को छोड़ कर नर्मदा के किनारे माहेश्वर नामक एक बस्ती में जाकर रहती थीं। वहाँ के किसान जब तब देखते थे कि उनके थके बैलों तथा भैंसों को रानी के नौकर पानी पिला रहे हैं, और घास काटकर खिला रहे हैं। अहिल्याबाई ऐसी दयालु थीं कि कितने ही अनाज लगे हुए खेत पक्षियों के लिए छोड़ देती थीं। दूर दूर से झुण्ड के झुण्ड पक्षी आकर वहाँ आश्रय लेते थे और बड़ी निर्भयता के साथ दाना चुगते थे। मछलियों के लिए वह नर्म्मदा के जल में सत्तू और गेहूँ का आटा डलवाती थीं। जब वे सुनती थीं कि उनके किसी आश्रित या कर्मचारी के घर सन्तान पैदा हुई है तब वे उस बच्चे को दूध पिलाने के लिए एक दुधार गाय भेज देती थीं। तीर्थयात्रा के समय वे अनेक प्रकार के फलों के बीज अपने साथ ले जाती थीं। जिस मैदान में, जिस नदी और सड़कों के किनारे पेड़ नहीं देखती थीं वहाँ वे अपने हाथ से उन उपयुक्त बीजों को

रोपती थीं। जब उनसे कोई पूछता था कि आप ऐसा क्यों करती हैं तब वे कहती थीं कि "इन रोपे हुए बीजों में सब न होकर यदि दो चार भी लग जायँगे तो समय पाकर वे अवश्य फूलें फूलेंगे। थके हुए पथिक उनकी छाया में बैठकर ठंडे होंगे, भूखे लोग उनके फल खाकर अपनी आत्मा को तृप्त करेंगे और पक्षिगण उनकी डालियों में घोंसले बना कर रहेंगे। इससे संसार का कुछ न कुछ उपकार होहीगा, मेरा उद्देश्य विफल न होगा।" अहा! क्या ही सुन्दर और क्या ही पवित्र भाव है! जिस देश में ऐसी दया-मयी स्त्री जन्म लेती है वह देश धन्य है! भारतवर्ष की पुराणो-ल्लिखित पतिव्रताओं की कथा केवल कविकल्पना ही नहीं है, अहिल्या के सदृश धर्मशीला स्त्रियों के चरित्र से वह प्रमाणित हो सकती है।

इस दयामयी अहिल्या के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हुई थी, एक बार उसके स्वभाव की भी आलोचना कीजिए। अहि-ल्याबाई अठारह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई। विधवा होने के कुछ ही दिन पूर्व उनके एक बेटा हुआ जिसका नाम मालीराम रक्खा गया। वह बालपन से ही बिगड़ चला। उसकी चित्तवृत्ति बराबर बुरे कामों की ओर लगी रहती थी। अनाचारी बालकों के साथ मद्यपान करते करते वह एक-दम ज्ञानशून्य हो गया। उसे अपने हिताहित की बुद्धि प्रायः लुप्त सी हो गई। नशे की हालत में वह कभी कभी ऊँचे दर्जे के नौकरों को भी बेंत से पीटता था और नौकरों के द्वारा उन्हें अपमानित करता था।

विधवा होने पर अहिल्या ने सब सुख त्याग कर ब्राह्मण-साधुओं की सेवा में अपना जीवन समर्पण कर दिया था। मालीराव का माता के इस धर्माचरण में सहानुभूति प्रकट करना

तो दूर रहा, वह भाँति भाँति की विघ्न-बाधायें डालता था। अहिल्याबाई साधु, संन्यासी और ब्राह्मणों को देवता की तरह भक्ति करती थी मालीराव उनको टेढ़ी दृष्टि से देखता था। माता के भक्तिपात्रों को निकालने के लिए वह नित्य नया नया उपाय रचता था। वह ऐसा दुष्ट था कि कभी कपड़े या जूते के भीतर बिच्छू को छिपाकर ब्राह्मणों को पहनने के लिए देता था। कभी ताँबे या पीतल के घड़े में रुपये भर कर और उसके भीतर एक विषधर साँप रखकर ब्राह्मण और साधुओं को उसमें से यथेच्छ रुपया लेने का आदेश देता था। रुपया निकालते समय जब उन निरपराधियों के हाथ में साँप डँसता था तब उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती थी। पुत्र के ऐसे क्रूर व्यवहार से अहिल्या का कोमल हृदय विदीर्ण होता था। वे पुत्र के दुराचार से दिन-रात रोया करतीं और सताये व्यक्तियों को यथेष्ट पुरस्कार देकर सान्त्वना-वाक्यों से उन्हें संतुष्ट करने का यत्न करती थीं। अहिल्या जैसी धर्मशीला के गर्भ से जब मालीराव जैसा कुपुत्र उत्पन्न हुआ तब गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन आदि कुपुत्रों का जन्म होना अस्वाभाविक नहीं समझा जा सकता। अब हम प्रकृत विषय का उल्लेख करते हैं। राजा धृतराष्ट्र के छोटे भाई का नाम पाण्डु था। उनके पहली पत्नी कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा दूसरी स्त्री माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाण्डु के पुत्र होने के कारण वे पाँचों भाई पाण्डव के नाम से विख्यात हुए।

पाण्डु का देहान्त होने पर उनकी छोटी पत्नी माद्री उनके साथ सती हो गई। कुन्ती अपने और सौतेले बेटों को साथ ले हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के आश्रय में रहने लगी। गान्धारी और

धृतराष्ट्र पाण्डु के बेटों को अपने पुत्र की भाँति प्यार करते थे। पाण्डव पाँचों भाई बाहुबल और बुद्धि में दुर्योधनादिकों से बड़े थे, इसलिए प्रजागण उन पर अधिक अनुराग रखते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। यह दुर्योधन को बहुत बुरा लगता था। धृतराष्ट्र ज्येष्ठ होने पर भी जन्मान्ध थे, इसलिए उनको राज्य पाने का अधिकार न था। यदि पाण्डु जीते होते तो वही राज्य करते, इस कारण बहुतेरी प्रजायें कहती थीं कि पाण्डु के बेटे ही राज्य के सच्चे अधिकारी हैं। इससे दुर्योधन का क्रोध पाण्डवों पर और भी बढ़ गया था। बाल्यकाल से ही उसकी क्रूर बुद्धि शकुनि मामा की तरह परिवार्द्धत हो चली थी। किस तरह पाण्डवों को मार कर वह निष्कण्टक होगा, सदा इसी चिन्ता में डूबा रहता था। पाण्डवों में भीम बड़े बलिष्ठ थे और गदायुद्ध में दुर्योधन के प्रतिद्वन्द्वी थे, इसलिए सबों की अपेक्षा भीम पर उसका विशेष द्वेष था। एक बार उसने गुप्तरीति से मिठाई में विष मिला कर भीम को खिला दिया था। किन्तु ईश्वर की कृपा से भीम बच गये। इसी तरह एक बार उसने गन्धक और घी इत्यादि के योग से एक लाक्षागृह बनवा, कपटकौशल से पाण्डवों को उसमें ठहरा कर आग लगवा दी थी। विशेष कर लाह के संयोग से वह घर बना था, इसलिए वह लाक्षागृह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भाग्यवशात् दुर्योधन के बुरे आशय की ख़बर पाकर वे लोग उस लाक्षागृह में आग लगने के पूर्व ही भाग कर अपने प्राण बचा सके। गान्धारी या धृतराष्ट्र पुत्र के कुव्यवहार के सम्बन्ध में पहले कुछ न जानते थे। पीछे जब उन्हें पुत्र के दुराचार की ख़बर लगी तब वे कभी उसे मीठी बातों से समझाते थे, कभी क्रोध कर डाँट डपट बताते थे, कभी उसकी

र्सना करते थे, परन्तु इससे कुछ फल न होता था। ज्यों ज्यों समय बीतने लगा त्यों त्यों दुर्योधन का क्रोध पाण्डवों पर बढ़ने लगा।

धनुर्विद्या में अर्जुन संसार भर में अग्रगण्य थे। बाण-विद्या में उनका मुक़ाबला करनेवाला उस समय कोई न था। उनका लक्ष्य कभी व्यर्थ न होता था। लाक्षागृह से भाग निकलने के बाद पाण्डवों ने सुना कि पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद ने अपनी कन्या के ब्याह के लिए एक महासभा करके इस बात की सर्वत्र घोषणा की है कि "इस महासभा में आये हुए व्यक्तियों में जो नीचे रक्खे हुए पानी में लक्ष्य का प्रतिबिम्ब देख कर लक्ष्य वेधेगा वही उनकी परम-सुन्दरी द्रौपदी के पाने का अधिकारी होगा।" यह संवाद सुन कर पाण्डवगण भेस बदल कर द्रुपद की सभा में उपस्थित हुए। उस समय प्रधान प्रधान राजा महाराजा और वीरगण सभी सभा में बैठे थे; किन्तु उन सबों में कोई लक्ष्य वेधने में समर्थ न हुआ। अन्त में ब्राह्मण-वेषधारी अर्जुन ने लक्ष्य भेद करके द्रौपदी का लाभ किया। जो काम क्षत्रिय वीरगण न कर सके उसे एक साधारण ब्राह्मण ने कर डाला। यह देख आगत राजा सब क्रुद्ध हो अर्जुन के साथ युद्ध करने को उद्यत हुए। किन्तु भीम और अर्जुन के बाहुबल के आगे कोई ठहर न सका। सबने परास्त होकर अपने अपने घर का रास्ता लिया। इधर लक्ष्य वेधनेवाले का असली परिचय पाकर राजा द्रुपद के आनन्द की सीमा न रही। अर्जुन राजाओं को हराकर द्रौपदी को साथ ले माँ के पास आये और कहा—"माँ! मैं एक अपूर्व वस्तु लाया हूँ।" कुन्ती ने समझा कि कोई खाने की वस्तु लाया होगा। इस कारण उसने कहा—"पाँचों भाई बाँट लो।" माता की आज्ञा कैसे टाली

जा सकती थी, पाँचों भाई पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ ब्याह किया ।

पाण्डव आग में जल कर मर गये, यह बात सर्वत्र ख्यात हो गई थी, किन्तु इस समय उनके जीवित रहने और पाञ्चाल देश के राजा की बेटी द्रौपदी के साथ ब्याह करने की बात सुन कर गान्धारी और धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उन सबों को बड़े आदर से हस्तिनापुर में बुलाया और भविष्य में जिससे दुर्योधनादि के साथ उनका कलह न बढ़े इस कारण राज्य बाँट दिया । दुर्योधन पुरानी राजधानी हस्तिनापुर में ही रहे । पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम की नई राजधानी स्थापित की । बहुतेरे लोगों का अनुमान है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी दिल्ली ही किसी समय इन्द्रप्रस्थ के नाम से विख्यात थी । दिल्ली का एक अंश अब भी इन्द्रप्रस्थ शब्द का अपभ्रंश "इन्दरपथ" के नाम से पुकारा जाता है ।

पाण्डव नई राजधानी बसा कर उसकी शोभा और समृद्धि बढ़ाने की चेष्टा करने लगे । उन्होंने शहर के चारों ओर ख़ूब मज़बूत क़िला बनवाया और गहरी खाई खुदवा कर शत्रुओं के आक्रमण के भय से निश्चिन्त हुए । अच्छी अच्छी सड़कें बनवाईं, जिनके दोनों किनारे पेड़ लगवाये । सुन्दर बाग़ और निर्मल जल से भरे हुए सरोवर नगर की शोभा बढ़ाने लगे । बड़े बड़े विशाल भवन, देवमन्दिर, बाज़ार और धर्मशाला आदि स्थापित होने से राजधानी की शोभा बहुत बढ़ गई । पाण्डवों के सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर देश-देशान्तर के व्यवसायी लोग वहाँ आकर रहने लगे । थोड़े ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ ने अपनी शोभा और समृद्धि में हस्तिनापुर को जीत लिया ।

पाण्डवों के वैरी दुर्योधन को यह सह्य न हुआ। वह पाण्डवों की उन्नति देख कर मन ही मन जलने लगा। इससे भी बढ़ कर उसके मन में भारी विद्वेष पैदा करनेवाली यह बात हुई कि पाण्डव पास के राजाओं को जीत कर राजसूय यज्ञ करने को उद्यत हुए। अद्वितीय, परम प्रभावशाली सार्वभौम राजा को छोड़ कोई राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान नहीं कर सकता। इससे अन्यान्य राजाओं को अपनी हार स्वीकार कर यज्ञकर्ता की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। भीम और अर्जुन ने अपने बाहुबल से युद्ध में सब राजाओं को पराजित किया। दुर्योधन इच्छा न रहते भी कुलश्रेष्ठ जान कर युधिष्ठिर की प्रधानता स्वीकार करने को बाध्य हुआ। किन्तु लोग जितनी ही पाण्डवों के बल-पराक्रम की बड़ाई करने लगे उतनी ही दुर्योधन की मार्मिक पीड़ा बढ़ने लगी। किस तरह पाण्डवों का सर्वनाश होगा, वह इसकी चिन्ता करने लगा।

गान्धार देश का राजकुमार शकुनि बहुत दिनों से हस्तिनापुर में था। एक तो वह दुर्योधन का अत्यन्त समीपस्थ सम्बन्धी था, दूसरे दोनों का स्वभाव परस्पर मिला जुला था, इसलिए दोनों में बड़ी मैत्री थी। दोनों एक साथ सलाह विचार करके कोई काम करते थे। साधुओं से अच्छी और दुर्जनों से बुरी ही सलाह मिलती है। शकुनि दुर्योधन को अपने दुःस्वभाव के अनुसार बुरा ही विचार दिया करता था। 'बाहुबल से पाण्डवों का जीतना सहज नहीं है इसलिए कपट-कौशल से पाण्डवों का सर्वनाश करना चाहिए' यह दोनों ने पक्का विचार किया। उन दिनों राजाओं की यह एक रीति थी कि जो कोई उन्हें लड़ने या जुआ खेलने के लिए बुलाता तो वे इनकार न करते थे। इनकार

करने से लोग उन्हें कायर समझते थे। जुआ खेलने में शकुनि बड़ा ही प्रवीण था। निश्चय हुआ कि शकुनि दुर्योधन की ओर बाज़ी लगा कर जुआ खेलेगा और जुए में युधिष्ठिर को हरा कर उनका सर्वस्व हरण कर लेगा।

दुर्योधन के अनुरोध से धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को हस्तिनापुर बुला कर जुआ खेलने की आज्ञा दी। जुआ बहुत बुरा खेल है, यह जान कर भी उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार तथा चचा के अनुरोध से युधिष्ठिर जुआ खेलने में प्रवृत्त हुए। शकुनि उनकी अपेक्षा जुआ खेलने में निपुण था, इसलिए वह जीतने लगा और युधिष्ठिर प्रति बार हारने लगे। युधिष्ठिर क्रमशः जुए में धन-रत्न, भूषण, हाथी, घोड़े, रथ, कोशागार यहाँ तक कि भाई और द्रौपदी पर्यन्त को हार गये। पीछे उन्होंने अपने ही को बाज़ी रक्खा, उस दफ़े भी शकुनि ही की जीत हुई। दुर्योधन और उसके भाई युधिष्ठिर को पराजित देख नाना प्रकार के मर्म-भेदी उपहास-वाक्यों से उनका जी दुखाने लगे। दुर्योधन की आज्ञा से उसका पापिष्ठ भाई दुःशासन द्रौपदी को अन्तःपुर से केश पकड़ कर ले आया और भरी सभा में उसके बदन पर से बरजोरी कपड़ा खींचने लगा। सभास्थ धार्मिकगणों ने उसके इस कुव्यवहार से मर्माहत होकर सिर नीचा कर लिया। युधिष्ठिर तो अपनी इच्छा से अपने और द्रौपदी को जुए में हार चुके थे। किसी के हाथ बिके हुए दास और दासी के ऊपर स्वामी का सब अधिकार है, यह सोच कर वे दुःशासन की इस अनीति पर कुछ न बोले, चुपचाप बैठे रहे। भारतवर्ष के बड़े बड़े सम्भ्रान्त क्षत्रिय राजा महाराजा भी उस सभा में बैठे थे, परन्तु एक अबला को इस प्रकार अपमानित होते देख कर किसी ने

कुछ न कहा। जान पड़ता है इसी पाप से क्षत्रियों का प्रकृत महत्त्व अब इस भारत-भूमि से विदा होकर सात समुद्र के पार चला गया।

जब राजसभा में ये सब बातें हो रही थीं तब गान्धारी महल के भीतर थीं। वे दुर्योधन के इस अत्याचार की बात सुन कर बड़ी दुखी हुईं और तुरन्त उन्होंने सब समाचार धृतराष्ट्र से जाकर कहा। धृतराष्ट्र ने राजसभा में जाकर दुर्योधन को खूब फटकारा और द्रौपदी को मधुर वाक्यों से सान्त्वना देकर दासीत्व-बन्धन से छुड़ा दिया। युधिष्ठिर और उनके भाई, धृतराष्ट्र की कृपा से, दासत्व से छुटकारा पाकर इन्द्रप्रस्थ को गये।

दुर्योधन और शकुनि आदि दुष्टगण हाथ में आये हुए वैरियों को इस प्रकार निकलते देख बड़े दुखी हुए। उनके क्षोभ की सीमा न रही। उन्होंने धृतराष्ट्र के पास जाकर फिर पाण्डवों को बुलाने और उनको जुआ खेलने के लिए आज्ञा देने के निमित्त प्रार्थना की। स्वभावतः धर्मभीरु और पाण्डवों के प्रति स्नेहपरायण होने पर भी धृतराष्ट्र ने हृदय की दुर्बलता के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार करके युधिष्ठिर को फिर जुआ खेलने के लिए बुलाया। यह जान कर गान्धारी को मर्मान्तक पीड़ा हुई। पतिभक्तिपरायणा होकर भी उसने, स्वामी को इस प्रकार पाप-कर्म में सहायता करते देख, अत्यन्त दुखी होकर पति के पास जाकर कहा—महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं? पुत्रस्नेह से विचारशून्य होकर आप कुलक्षयकारी कार्य में क्यों प्रवृत्त हुए हैं? दुर्योधन हमारे वंश में कुलकुठार उत्पन्न हुआ है। उसकी बात में पड़ कर आप अपना अनिष्ट न करें। पुत्र ही को पिता की

बात माननी चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। तो आप उसकी बात क्यों सुनते हैं? यदि आप मेरा कहा मानें तो दुर्योधन को त्याग दें, नहीं तो भारी विपद् खड़ी होगी।

धर्मपथदर्शिनी सहधर्म्मिणी की बात सुन कर धृतराष्ट्र बोले—प्रिये! यदि विधाता को वही करना होगा तो उसे कौन रोक सकेगा। भावी को कोई मिटा नहीं सकता। दुर्योधनादिक जो चाहें करें, पाण्डवों के साथ फिर उनकी जुएबाज़ी चले।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से फिर जुआ आरम्भ हुआ। दुष्ट शकुनि ने युधिष्ठिर के निकट यह प्रस्ताव किया कि इस बार जुए में हम आपसे हारें तो मृगछाला पहन कर हम बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करेंगे। अगर हम जीतेंगे तो द्रौपदी सहित आप पाँचों भाइयों को उसी तरह तेरह वर्ष बिताना होगा। तेरह वर्ष बीतने पर फिर आप अपना राज्य पावेंगे। आइए, हम आप यही बाज़ी रख कर इस बार जुआ खेलें।

सभास्थ सब लोग भयङ्कर बाज़ी की बात सुन कर बहुत दुखी हुए; किन्तु युधिष्ठिर महाराज लोकलज्जा में पड़कर उस पण को स्वीकार कर जुआ खेलने लगे।

इस बार भी शकुनि ही की जीत हुई। पाण्डवगण पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार राजकीय वस्त्र और अस्त्र-शस्त्र परित्याग कर मृगचर्म्म पहन संन्यासी की भाँति सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगा कर जङ्गल को रवाना हुए। पतिव्रता द्रौपदी भी उनके साथ गई। दुर्योधन और उसके और भाई पाण्डवों को उस अवस्था में देखकर उनका तीव्र उपहास करने लगे। यह देख कर हस्तिनापुरवासी समझ गये कि दुर्योधन ने अपनी दुर्बुद्धि से जो विरोधरूपी आग जलाई है उससे कुरुवंश शीघ्र ही जल कर भस्म होगा।

तेरह वर्ष बीत जाने पर पाण्डव अपनी राजधानी को लौट आये और पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार फिर अपना राज्यांश पाने के लिए श्रीकृष्ण को दूत रूप में हस्तिनापुर भेजा। किन्तु दुर्योधन ने "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" अर्थात् बिना युद्ध के सुई के अग्रभाग बराबर भी भूमि न दूँगा—यह प्रतिज्ञा की। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने गान्धारी को अन्तःपुर से सभा में बुला कर दुराचारी पुत्र को उपदेश देने कहा। मारे खेद और क्रोध के गान्धारी के मुँह से कोई शब्द न निकलता था। उन्होंने दुर्योधन से कुछ कहने के पूर्व स्वामी से कहा—महाराज! यह जो भारी टंटा खड़ा हुआ है, इसके लिए आप ही पूरे बदनाम होंगे। आप दुर्योधन का दुष्टाशय जान कर भी उसके मतानुसार चलते हैं। दुर्योधन क्रोध और लोभ के ऐसा वशीभूत हो रहा है कि आप उसे अब बलपूर्वक भी दबाना चाहेंगे तो वह न दबेगा। मूर्ख और दुरात्मा के हाथ में राज्य का भार देने से जो फल होता है वह आप इस समय भोग रहे हैं।

इसके अनन्तर दुर्योधन से कहा—मैं तुम्हारे भविष्य कल्याण के लिए जो बात तुमसे कहती हूँ, वह तुम ध्यान देकर सुनो। तुम्हारे पिता और भीष्म, द्रोणाचार्य आदि धार्मिक व्यक्तियों ने जो कुछ तुमसे कहा है, उसका तुम पालन करो। न्यायपूर्वक कार्य करने से तुम सुखी होगे। यह तुम निश्चय जानो। अजितेन्द्रिय, विषयलोलुप मनुष्य कभी चिरकाल तक राज्य नहीं भोग सकता। जो मनुष्य न्यायी और सदाचारी है वही सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक राज्य भोगता है।

वत्स! स्वयं श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बन कर तुम्हारे यहाँ आये हैं। तुम उनकी बात मान लो। उनके प्रसन्न होने से

तुम्हारे दोनों दलों का कल्याण होगा। तुम्हारे पिता और भीष्माचार्य आदि धार्मिक व्यक्ति विरोध से डर कर पाण्डवों को राज्य का उचित अंश देने को सम्मत हैं। राज्य का आधा हिस्सा तुम लोगों के लिए काफ़ी है। तुमने जो तेरह वर्ष तक पाण्डवों की इतनी दुर्दशा की है, उस पर खेद प्रकाश करना और उन्हें सुखी करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। तुमने अपनी भूल से जो यह समझ रक्खा है कि भीष्म और द्रोणाचार्य आदि वीरगण तुम्हारे लिए प्राणपण से युद्ध करेंगे, वह कभी न होगा। क्योंकि वे लोग जानते हैं कि इस राज्य पर तुम्हारा और पाण्डवों का समान अधिकार है। यह जान कर ही वे लोग तुम दोनों पर बराबर स्नेह-भाव रखते हैं। उन लोगों को पूरा विश्वास है कि पाण्डव तुम सबों की अपेक्षा विशेष धर्मात्मा हैं। मान लो, तुम्हारे अन्न से प्रतिपालित होने के कारण वे लोग तुम्हारी ओर से लड़कर युद्ध में मर मिटेंगे; पर तो भी धार्मिक युधिष्ठिर के ऊपर वे कदापि अस्त्र प्रहार न करेंगे। बेटे! लोभान्ध मनुष्य कभी इष्टसिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते। तुम लोभ त्याग कर शान्त भाव धारण करो।

पत्थर पर बीज नहीं जमते। दुर्योधन के कठोर हृदय पर माता का उपदेश न लगा। उसने माता के सदुपदेश पर ध्यान न दिया। वह अपने संकल्प पर अचल बना रहा। जब लोगों का बुरा दिन आता है तब वे हित की बात नहीं सुनते। दुर्योधन से सब लोग कह कर थक गये पर उसने किसी की बात न मानी। युद्ध किसी के रोके न रुका। दोनों पक्ष अपने बन्धु-बान्धव और चतुरङ्गिणी सेना साथ ले घोर संग्राम करने को उद्यत हुए। दावाग्नि से जिस तरह घना जङ्गल जल कर भस्म हो

जाता है उसी तरह अठारह दिन की भयानक लड़ाई में कौरव और पाण्डवों की असंख्य सेना लड़ कर कट मरी। कितने ही सुकुमार राजकुमार, कितने ही बलिष्ठ युवा और कितने ही बूढ़े वीर उस समराग्नि में जल मरे। पुत्रहीना माता और पतिहीना स्त्रियों के आर्त्तनाद से अन्तःपुर भर गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। दूत प्रतिदिन युद्ध की घटना गान्धारी और धृतराष्ट्र के पास आकर विस्तारपूर्वक वर्णन कर कहता था—"आज की लड़ाई में आपके पौत्र मारे गये।" "आज आपकी एक-मात्र बेटी विधवा हो गई।" "आज आपके पुत्र का हृदय फाड़ करके भीम ने उसका रुधिर पान किया।" इस प्रकार रोज़ रोज़ की ख़बर गान्धारी के पास पहुँचने लगी। युद्ध का परिणाम ऐसा ही होगा; यह बात वह पहले ही से जानती थी, इसलिए वह इन शोकसंवादों को सुनने के लिए हृदय को दृढ़ किये थी। किन्तु धर्मज्ञान से धैर्य्य धारण करने पर भी पुत्र-स्नेह के निकट धीरता, सहिष्णुता आदि सभी गुण लुप्त हो जाते हैं। परन्तु उस अवस्था में भी उनके अधार्मिक पुत्र विजयी हों, यह भावना कभी उनके मन में न उत्पन्न हुई। उनके पुत्रों की बुद्धि अच्छी हो, वे धर्मपरायण हों, यही वे ईश्वर से नित्य प्रार्थना करती थीं।

जब रणभूमि में जाने के पूर्व उनके बेटे उन्हें प्रणाम करके बिदा माँगने आते थे तब वे यही कहती थीं—"बेटे! यतो धर्म-स्ततो जयः।" जहाँ धर्म वहीं जय। यहाँ गान्धारी की धर्मपरा-यणता विशेष प्रशंसनीय है।

युद्ध समाप्त हुआ। पाण्डव पाँचों भाई बच गये। किन्तु उनके पुत्र, और कितने ही आत्मीय बन्धु-बान्धवगण मारे गये।

दुर्योधन आदि सौ भाई युद्ध में हत हुए। दोनों दलों की असंख्य सेनायें हत हुईं। युद्धक्षेत्र में रक्त की धारा बह चली। सारी रण-भूमि रुण्डमुण्डमयी हो गई। उस युद्ध-स्थल के भयानक दृश्य का वर्णन नहीं हो सकता। युद्ध करना राक्षस का कार्य्य है। इस-लिए उस असुर कार्य में पड़कर कोई धर्मानुसार चलना चाहेगा, यह नहीं हो सकता। बहुत बच कर चलने पर भी कुछ न कुछ अधर्म हो ही जाता है। इसलिए पाण्डवगणों ने स्वभावतः धर्म-भीरु होने पर भी युद्ध में प्रवृत्त होकर किसी किसी स्थल में लाचारी अधर्म का आश्रय लिया था। उन्होंने कपट-युद्ध में कौरवदल के प्रधान प्रधान वीर पुरुषों को और कुरुराज दुर्यो-धन को मारा था। पाण्डवों के कपटाचार की बात सुनकर गान्धारी को मर्मान्तक कष्ट हुआ। उन्होंने अधर्माचरण के कारण पाण्डवों पर क्रोध प्रकाश करके उन्हें धिक्कारा। किन्तु जब उनको यह ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र ही सब अनर्थ के मूल थे, पहले वही कपट-युद्ध में प्रवृत्त हुए थे तब वे क्रोध त्याग कर पाण्डवों को पूर्ववत् स्नेह-भरी दृष्टि से देखने लगीं।

गान्धारी ने विवाह होने के पूर्व ही से अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी। पुत्र-कन्या के जन्म होने पर भी उन्होंने पट्टी खोल कर कभी किसी का मुँह नहीं देखा। ईश्वर ने उनके पति को जिस सुख से वञ्चित किया था उस सुख से वे आप भी वञ्चित हो रहीं। किन्तु युद्ध समाप्त होने पर उन्होंने एक बार मृत-पुत्रों को देखना चाहा। वह दृश्य सुख का नहीं था, आँखें रहते भी जो दृश्य उनके पति न देख सकते, जो दृश्य उनके पति के सुखानुभव का विषय न था, उसका देखना उन्होंने बुरा न समझा। इसलिए वे आँख की पट्टी खोलकर विधवा बेटी और

पतोहुओं को साथ ले युद्धक्षेत्र देखने गईं। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर-प्रभृति अनेक व्यक्ति उनके साथ गये। श्रीकृष्ण ने कुरु-पाण्डव के युद्ध में स्वयं अस्त्र-धारण न किया था। उन्होंने केवल अर्जुन के सारथि का काम किया था। किन्तु सच्ची बात यह है कि उन्हीं के बुद्धिकौशल से पाण्डवों ने विजय लाभ किया। गान्धारी यह बात जानती थीं। इसलिए पाण्डवों से कुछ न कह कर उन्होंने श्रीकृष्णजी के निकट अपनी मर्मवेदना प्रकट की।

रणक्षेत्र का दृश्य अत्यन्त भयङ्कर था! अत्यन्त मर्मभेदी था! चारों ओर असंख्य हताहत सेनाओं की लाशें पड़ी थीं। किसी का अङ्ग दो टुकड़ा होकर कटा था; किसी के हाथ पैर कटे थे; किसी का सिर धड़ से अलग पड़ा था; कितने ही हतभाग्य तब भी जीते हुए छटपटा रहे थे। उनमें कोई मारे यन्त्रणा के चिल्ला रहा था; कोई मारे प्यास के "पानी, पानी" कह कर कराह रहा था, कोई माँ, बाप, स्त्री और बेटे की बात याद करके रो रहा था। सैनिकों की लाश के साथ साथ मरे हुए घोड़े हाथियों के शरीर जहाँ तहाँ टीले की तरह पड़े थे। कहीं कहीं लहू की कीचड़ मच गई थी, जिसमें अगनित मक्खियाँ क्रीड़ा कर रही थीं। चारों ओर से ऐसा विकट दुर्गन्ध आता था कि उस जगह किसका सामर्थ्य जो क्षण भर भी खड़ा रह सके। झुण्ड के झुण्ड मांसभक्षी पशु-पक्षी रणक्षेत्र में आकर उल्लास से मुर्दों का मांस नोच नोच कर खा रहे थे। समरशायी वीर-गणों के अस्त्र-शस्त्र जहाँ तहाँ बिखरे पड़े थे। टूटे हुए रथों की अधिकता से रण-भूमि का मार्ग मिलना कठिन था। गान्धारी ने एक बार चारों ओर देखा, एक

दासी उनके मृत व्यक्तियों और उनकी अनुगामिनी कुरुनारियों का परिचय देने लगी। रण-भूमि का वह भयानक दृश्य देखकर गान्धारी का हृदय विदीर्ण हुआ। वे श्रीकृष्ण को पुकार कर बोलीं--हे कृष्ण! हाय! यह देखो, मेरी पतोहुएँ अनाथिनी की भाँति खुले केश, रोती हुई, अपने अपने पति, पुत्र, पिता और भाई का स्मरण करके उनकी लाश को व्याकुल होकर खोजती फिरती हैं। सारा मैदान पुत्रहीन माता और पतिहीना स्त्रियों से भरा है। यह देखो, गीध सब वीर पुरुषों की लोथों को घसीट कर आनन्द से उनका मांस नोच नोच कर खा रहे हैं। जो लोग किसी समय बन्दीजनों के मुँह से अपना सुयश और प्रताप सुनकर पुलकित होते थे वे आज शृगालों का भीषण चीत्कार सुन रहे हैं। यह देखो! मेरी पतोहुओं के कोमल मुखकमल कुम्हला गये हैं। उनकी आँसू भरी आँखें घूम रही हैं। कितनी ही भाँति भाँति के विलाप करके रो रही हैं। कितनी ही बार बार दीर्घनिःश्वास लेकर शोक से अचेत हो पड़ी हैं। कोई पति की लाश को छाती से लिपटा रही है। कोई पति के पैर को आँसुओं से धो रही है। कोई पति के कटे मूँड़ को पाकर उसका शरीर खोज रही है। मैं जिधर देखती हूँ उधर ही अपने बेटे पोते, भाई और भतीजों की लाशें दिखाई देती हैं। जान पड़ता है, मैंने पूर्व जन्म में कोई घोर पाप किया था नहीं तो आज मुझको यह दृश्य क्यों देखना पड़ता--इस प्रकार विलाप करते करते गान्धारी वहाँ गई जहाँ दुर्योधन की लाश पड़ी थी। वह उससे लिपट कर "हा पुत्र! हा दुर्योधन!" कहकर खूब उच्च स्वर से रोने लगी। पीछे उसने श्रीकृष्ण से कहा—इस परिवार-नाशक युद्ध जारी होने के समय दुर्योधन ने विजय के लिए

मुझसे आशीर्वाद माँगा था। मैंने कहा था—"वत्स ! जहाँ धर्म वहीं जय।" जब तुम युद्ध से मुँह नहीं मोड़ते तब निश्चय है कि तुम वीरगति को प्राप्त होगे। "यह बात बोलते समय, युद्ध में पुत्र निहत होगा।" इसका ज़रा भी शोक मुझको न हुआ। किन्तु अभी पुत्र-पौत्र-बन्धु-बान्धवों से विहीन महाराज (धृतराष्ट्र) की भविष्य दशा सोच कर मैं शोक से व्याकुल हो रही हूँ। यह देखो ! दुर्योधन की स्त्री मेरी बड़ी पतोहू सिर पीट पीट कर कभी पति का, कभी बेटे का मुँह निहार रही है। मेरा बेटा अधर्मी है—इसमें सन्देह नहीं, किन्तु पहले उसने जो कुछ किया हो, युद्ध में उसने क्षत्रियधर्म का पालन किया। वह अकेला पाण्डवों के साथ सम्मुख युद्ध में न डरा। यदि शास्त्र सत्य है तो वह अवश्य ही स्वर्गलोक का अधिकारी होगा।

भगवान् ! मेरी पतोहुओं की दशा देख कर मुझे मर्मान्तक कष्ट हो रहा है। मेरे पुत्र विकर्ण की युवती स्त्री की ओर देखो। वह गिद्ध और शृगाल आदि दुष्ट जन्तुओं के आक्रमण से स्वामी की देहरक्षा के लिए बारम्बार चेष्टा कर रही है परन्तु किसी तरह कृतकार्य नहीं होती। अहा ! मेरी लाड़ली बेटी दुःशला अपने पति जयद्रथ का मृत शरीर पाकर उसके मस्तक की खोज में उन्मादिनी की भाँति इधर-उधर दौड़ रही है। माता होकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखने से मेरे मन में जो कुछ वेदना हो रही है वह क्या कहकर तुम्हें समझाऊँ ? हा ! तुम्हारे भागिनेय अभिमन्यु की लाश लहू से लथपथ होकर देखो सामने पड़ी है। मरने पर भी उसके मुँह की शोभा बनी है।' हतभागिनी उत्तरा कवच हटा कर उसके बाणविद्ध शरीर को एकदृष्टि से देख रही है। हाय ! हाय ! आचार्य की पत्नी कृपी पति-शोक से व्याकुल

होकर देखो किस दीन भाव से सिर नीचा किये बैठी है। सामगायकगण आग लाकर विधिपूर्वक आचार्य की चिता प्रस्तुत कर रहे हैं। बेटे, पोते, भाई-भतीजे और सम्बन्धियों को युद्ध में निहत देख कर मैं अब किसी तरह धैर्य धारण नहीं कर सकती। हा दैव! क्या मुझको यही सब दृश्य दिखाने के लिए जिला रक्खा था?

गान्धारी इस प्रकार विलाप करते करते मूर्च्छित हो गिर पड़ी और कुछ काल के बाद रिस भरे स्वर में बोली—कृष्ण! मैंने महात्माओं के मुँह से सुना है कि तुम नारायण हो। किन्तु जब तुम नर-देह धारण करके मनुष्य की भाँति पाप-पुण्य का भाग ले रहे हो तब तुमको भी मनुष्य-जन्म का सुख-दुख भोगना पड़ेगा। तुम जैसे शास्त्रज्ञ, वाक्यविशारद और पराक्रमी हो, तुम्हारे जितना बाहुबल और बुद्धिबल है उससे यदि तुम और भी एक बार निश्छल भाव से यत्न करते तो तुम कुरु-पाण्डवों के युद्ध को रोक सकते थे; यह मुझे विश्वास होता है। किन्तु तुम उपेक्षा करके निश्चेष्ट थे, युद्ध रोकने का तुमने कुछ विशेष यत्न न किया। यदि तुम युद्धनिवारण न कर सके तो किसी पक्ष का ग्रहण न करना ही तुम्हारे लिए उचित था। तुमने युद्ध में हथियार न लिया—यह सच है, किन्तु तुम्हारा मन्त्र अस्त्र की अपेक्षा भी सहस्रगुण भयंकर कार्य्य कर चुका। मेरे बेटों को अधर्माचारी समझ कर यदि तुमने उन्हें त्याग दिया तो पाण्डवों ने जिस दिन कपट-युद्ध में भीष्म को धराशायी किया था उस दिन उन्हें क्यों नहीं त्याग दिया? अधर्म को आश्रय देना पाप है, उसका फल क्लेश तुम्हें भी अवश्य भोगना होगा। तुम्हारे भी बेटे, पोते और बन्धु-बान्धवगण इसी तरह ज्ञाति-विवाद से नष्ट होंगे। कुरुवंश

की विधवायें आज जिस तरह विलाप कर रही हैं, तुम्हारे कुल की स्त्रियाँ भी इसी तरह बन्धु-बान्धवों के शोक में पड़ कर विलाप करेंगी ।

श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर कहा—देवि ! आपने जो बात कही है, मैं बहुत दिन पूर्व ही से उसके लिए तैयार हूँ । जो कार्य मेरे अवश्य सम्पादनीय हैं आपने अभी वही कहे हैं ।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हुआ । पाण्डवों ने निष्कण्टक राज्य पाया । उन्होंने गान्धारी और धृतराष्ट्र को भक्ति और सेवा-द्वारा प्रसन्न किया । वे दोनों भी क्रमशः शोक-दुःख भूल कर पाण्डवों को पुत्रवत् समझकर उन पर स्नेह करने लगे । पाण्डवों के सद्व्यवहार से उनको कुछ कष्ट न रहा । किन्तु उनके लिए शान्ति दुर्लभ थी । हस्तिनापुर श्मशान की भाँति सुनसान दीख पड़ता था । पतिपुत्रहीना स्त्रियों के रोने चिल्लाने से वे दिन रात व्याकुल रहते थे । पुत्रगणों का स्मरण उन दोनों के शोकार्त हृदय को दग्ध करता ही रहता था । आख़िर उन्होंने वन में निवास करके तपस्या से जीवन का शेष भाग बिताने का संकल्प किया ।

पाण्डवों से सलाह ले गान्धारी और धृतराष्ट्र गंगा के किनारे एक सुन्दर कुटी बना कर रहने लगे । वहाँ वे यज्ञ का अनुष्ठान, वेदपाठ का श्रवण और शास्त्रचिन्ता से शान्तिपूर्वक समय बिताने लगे । धर्मात्मा युधिष्ठिर सदा उनकी खोज ख़बर लिया करते और कभी कभी उनके आश्रम में जाकर उन्हें देख आते थे । एक दिन धृतराष्ट्र जब यज्ञ समाप्त कर चुके तब पुरोहित उस यज्ञीय आग को निर्जन वन में फेंक कर अपने अपने स्थान

को गये। क्रमशः वह आग सूखी लकड़ी में लग कर चारों ओर फैल गई। उस समय गान्धारी और धृतराष्ट्र कुटी में बैठे थे। अकस्मात् उन्हें आग की चटचटाहट और आश्रमवासियों का आर्त्तनाद सुन पड़ा। बात की बात में आग ने भयानक रूप धारण कर कुटी को चारों ओर से घेर लिया। "अब रक्षा नहीं। भागो, भागो" यह शब्द बार बार उनके कान में आने लगा। धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा—प्रियतमे! तुम अब अपनी आँख की पट्टी खोलो, मार्ग सूझ पड़ते ही अनायास यहाँ से भाग सकोगी। मुझको साथ ले चलने से तुम्हारे जाने में व्याघात होगा। तुम भाग कर अपना प्राण बचाओ; मेरे लिए कुछ चिन्ता न करो।

गान्धारी ने कहा—आपने इतने दिन बाद यह कैसा आदेश किया? किस सुख की आशा से मैं आपको छोड़ कर अपना प्राण बचाऊँगी? आइए, एक दिन हम आप आग को साक्षी रख कर दाम्पत्य-सम्बन्ध में बद्ध हुए थे, आज उसी आग में जीवन त्याग कर हम दोनों सदा के लिए शान्तिलाभ करें।—यह कह कर गान्धारी पति के शरीर से लिपट गई और उसी अवस्था में दोनों आग में जल कर भस्मीभूत हो गये।

चौथा आख्यान

सावित्री

चन्द्रभागा और विपाशा नदी के मध्य का प्रदेश पूर्वकाल में मद्रदेश के नाम से विख्यात था। किसी समय इस मद्रदेश में अश्वपति नाम के एक राजा राज्य करते थे। राजा अश्वपति जैसे सत्यवादी थे, वैसे ही जितेन्द्रिय और दयालु थे। उनकी पटरानी मालवी भी रूपगुण में सब प्रकार उनके अनुरूप थी। उन दोनों के अच्छे गुणशील के कारण प्रजा उन्हें अपने माँ-बाप के बराबर मानती थी।

राजा अश्वपति की राजधानी अन्न, धन, परिजन और भोग-विलास की वस्तुओं से परिपूर्ण थी। पर उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण उन दोनों पति-पत्नी का हृदय सदा उद्विग्न रहता था। पश्चात् उन दोनों ने सन्तान की इच्छा से इन्द्रिय और मन को रोक कर कई वर्ष सावित्री देवी की आराधना की। अन्त में देवी की कृपा से उन्होंने एक अनुपम कन्यारत्न लाभ किया। सावित्री देवी की दया से प्राप्त होने के कारण उस कन्या का नाम सावित्री रक्खा। सावित्री शुक्लपक्ष की शशिकला की भाँति दिन दिन बढ़ने लगी। क्रमशः उसने यौवन की सीमा

में पैर रक्खा। युवत्व प्राप्त होने के कारण उसके अंग-प्रत्यंग की शोभा और भी बढ़ गई। वह अपने रूप-लावण्य से रति, रम्भा को भी लजाने लगी। उसे बार बार देखकर भी लोगों के नयन तृप्त न होते थे।

वसन्त का आगम होते ही मद्रदेश ने अत्यन्त रमणीय शोभा धारण की। तरुलतागण नये पल्लवों से सुशोभित हुए, वनभूमि जंगली फूलों के सुगन्ध से आमोदित हुई। आम की मंजरी पर झुंड के झुंड भौंरे गूंजने लगे। कोयलें पञ्चमराग अलापने लगीं। राजा अश्वपति राजकार्य से छुट्टी पाकर अपराह्न को विश्राम के हेतु अन्तःपुर में गये। साँझ होते ही सारा महल असंख्य दीप-माला से जगमगा उठा। देवमन्दिरों से शंख और घण्टाध्वनि के साथ वेदपाठ सुनाई देने लगा। धूप से समस्त राजभवन सुग-न्धित हो गया।

सन्ध्यावन्दन के अनन्तर राजा महल के भीतर एक घर में बैठे। एक दासी पंखी लेकर उनको झलने लगी। रानी उनके समीप ही एक दूसरे आसन पर बैठकर फूल की माला गूँथने लगी। राजा ने रानी से कहा—आज सावित्री यहाँ क्यों दिखाई नहीं देती? और दिन दरबार से मेरे आने के पूर्व ही वह मेरे पैर धुलाने के लिए जल लेकर खड़ी रहती थी। आज इतनी देर मुझको यहाँ आये हुई, सावित्री अब तक मेरे पास न आई इसका कारण क्या?

रानी ने कहा—महाराज! कल सावित्री के कल्याणव्रत का उद्यापन होगा, इसी से आज वह पूजा करने के लिए देवमन्दिर में गई है। जान पड़ता है, सायङ्कालिक हवन देखने की इच्छा से अब तक वहाँ ठहरी है। किन्तु आप जो प्रतिदिन इस समय भीतर

आते हैं, यह उसे मालूम है, इसलिए वह आने में विलम्ब न करेगी, अब आती ही होगी।

राजा—क्या उसने फिर कोई नया व्रत ठाना है? हाल ही में वह एक व्रत का उद्यापन कर चुकी है। उपवास करते करते सावित्री दिन दिन दुबली होती जाती है। तुम उसे रोकती क्यों नहीं?

रानी—मैं रोकने से बाज़ नहीं आती। किन्तु धर्मकार्य के अनुष्ठान में वह मेरी कही नहीं सुनती। मना करने पर वह मेरी बात का उत्तर नहीं देती। किन्तु उसका मुँह ऐसा उदास हो जाता है, उसके आँसू भरे नेत्रों से ऐसी अधीरता व्यक्त होने लगती है जिसे देखकर मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता। मैं उससे कह देती हूँ; बेटी! जो तुम्हें अच्छा लगे, करो।—एक बात मैं और देखती हूँ कि उपवास करने ही से सावित्री का स्वास्थ्य ठीक रहता है। तपश्चर्या से ही वह अच्छी रहती है। व्रताराधन के समय रुक्षस्नान के बाद खुले केश से साक्षात् देवी की तरह उसकी जैसी शोभा देख पड़ती है, वैसी शोभा शृङ्गार करने पर भी मैं कभी किसी की नहीं देखती।

राजा—मेरी बेटी सावित्री तपस्विनी है। क्षत्रियाणी की अपेक्षा ब्राह्मणी का लक्षण ही उसमें अधिक देख पड़ता है। जिस व्यक्ति में क्षात्रधर्म के साथ साथ ब्राह्मणधर्म भी कुछ कुछ होगा, वही इसके उपयुक्त वर होगा।

रानी—आज मैंने पहले ही से सोच रक्खा था कि आपसे इस विषय में कुछ निवेदन करूँगी। अच्छा हुआ कि आपने स्वयं सावित्री के व्याह की बात चलाई। सावित्री अब व्याहने योग्य

हुई । उसके व्याह की बातचीत से आप निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ?

राजा—मैं निश्चिन्त नहीं हूँ । किन्तु सावित्री के योग्य सर्वगुणी वर मिलना कठिन है । हम लोगों के सम्बन्ध योग्य कुल का अभाव नहीं है, किन्तु कोई अब तक सावित्री को वधू रूप में ग्रहण करने का प्रस्ताव नहीं करता । तुमने इस पर लक्ष्य किया है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता । मैंने अच्छी तरह देखा है कि नवयुवक राजकुमार सावित्री की ओर साभिलाष दृष्टि से देखना तो दूर रहा, उसके मुँह की ओर देखने का भी साहस नहीं करते । सावित्री को देख कर कितने ही राजकुमार उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करके चले जाते हैं ।

रानी—आपका कहना बहुत ठीक है; किन्तु सावित्री के उपयुक्त वर न मिले तो क्या वह कुमारी ही रहेगी ? अब उसे किसी वर के हाथ सौंप देना ही उचित है ।

राजा—तुम इसके लिए चिन्ता मत करो । मैंने इसका उपाय सोच लिया है । मैं सावित्री ही के ऊपर उसके पति-निर्वाचन का भार दूँगा ।

रानी—यह कैसी बात आप कह रहे हैं ? हम आप उसके माता पिता होकर उसके उपयुक्त वर स्थिर नहीं कर सके । वह बेचारी तो एक अज्ञान बालिका है । वह आप ही अपने पति का निश्चय कैसे कर सकेगी ?

राजा—दूसरी कुमारिका होती तो मैं ऐसी बात न कहता । सावित्री जैसी बुद्धिमती, सुशीला और धर्मपरायणा है इससे पति-वरण करने का भार उसके ऊपर देना अयुक्त न होगा ।

सावित्री अब सयानी हुई, यदि हम उसके लिए वर ठीक करें और वह उसे पसन्द न हो तो उसके मन में बड़ा दुःख होगा, उसके साथ हम लोग भी दुखी होंगे। अगर सावित्री अपनी पसन्द से पति चुनेगी तो किसी के मन में कुछ दुःख न होगा। तुम यह निश्चय जानो, गङ्गा महासमुद्र को छोड़ कर क्षुद्र जलाशय में कभी प्रवेश नहीं करती। वह जब आत्मसमर्पण करेगी, महासमुद्र ही में। सावित्री कभी अयोग्य वर को स्वीकार न करेगी। यदि दैवयोग से उसका पति गुणशील में उससे कुछ न्यून भी होगा तो जैसे पारस-मणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है वैसे ही वह भी गुणवान् हो जायगा।

रानी—आपकी जो इच्छा हो, करें।

इसी समय किसी के नूपुर की मन्द मन्द मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी। रानी ने कहा—"महाराज! यह आपकी सावित्री आ रही है।" रानी की बात ख़तम होते न होते सखी को साथ लिये सावित्री उस घर में पहुँच गई। सावित्री के बाल खुले थे, ललाट में चन्दन लगा था, कण्ठ में फूल की माला थी, बसन्ती रङ्ग की सारी पहने थी। उसके उपवास से खिन्नमुख के ऊपर दीपक की ज्योति पड़ने से वह सायंकालिक कमल की भाँति सुन्दर दिखाई देता था। राजा वात्सल्य भरी दृष्टि से सावित्री के मुँह की ओर देखने लगे। सावित्री माँ-बाप को प्रणाम करके दासी के हाथ से पंखा लेकर पिता को हवा करने लगी। राजा उसे रोक कर बोले—"बेटी सावित्री! तुम आज दिन भर की भूखी हो, तुमको पंखा झलना न होगा। मुझे गरमी मालूम नहीं होती।" यह कह कर राजा ने बड़े प्यार से बेटी को अपने पास बिठा कर कहा—उस दिन तो तुम मेरे और रानी के दीर्घजीवन

के लिए व्रत कर ही चुकी हो। आज फिर कैसा व्रत किस अभि-प्राय से कर रही हो ?

सावित्री—पिताजी ! पुरोहित ने कहा है, आज कल्याण-पञ्चमी है। आज उपवासपूर्वक देवीपूजा करने से प्रियजनों का किसी तरह का कोई अमङ्गल नहीं होता। इसलिए जिसमें हमारी प्रजा दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रवों से कष्ट न पावे, मैंने आज उपवास किया है। कल जगदम्बा की पूजा करूँगी।

राजा—बेटी ! तुम्हारी सी कन्या पाकर हम अपने को धन्य मानते हैं। हम दोनों स्त्री-पुरुषों ने जो उतने दिन कठिन तपस्या की थी, वह सार्थक हुई। किन्तु तुम अभी बालिका हो, बराबर उपवास करके शरीर को इतना कष्ट मत दो। पहले अपने शरीर की रक्षा करके पीछे धर्माचरण करना उचित है।

सावित्री—उपवास से मुझे विशेष कष्ट नहीं होता। बिना कुछ कष्ट सहे धर्म कैसे होगा ?

रानी ने महाराज से कहा—आज सावित्री महर्षि देवल से उपनिषद् (वेदान्त) पढ़ते समय एक कहानी सीख आई है। वह आपको और मुझे सुनाना चाहती है। आपकी आज्ञा पावे तो कह सुनावे।

राजा—अच्छा तो, सावित्री ! कहो कौनसी कहानी सीख आई हो ?

सावित्री—वह कहानी मुझे बहुत अच्छी लगी। महर्षि ने जिस तरह कही थी, मैं उस तरह नहीं कह सकूँगी, तथापि जहाँ तक हो सकेगा, मैं कहने की चेष्टा करूँगी। वह कथा इस प्रकार है—

पूर्वकाल में देवता और दानवों में घोर युद्ध हुआ था। कई वर्ष तक युद्ध जारी रहने के बाद देवताओं ने जयलाभ किया। असुरगण हार कर भागे। देवगण युद्ध में विजयी होकर बड़े गर्वित हुए। उन्होंने समझा, हम सबों ने अपने बाहु-बल से असुरों को जीता है, इसलिए युद्ध-विजय के सम्पूर्ण सुयश के भागी हमी लोग हैं। इस तरह जब उन लोगों के मन में अहङ्कार उत्पन्न हुआ तब उन्हें एक दिन एक अपूर्व ज्योति देख पड़ी। उस ज्योति के आगे सब प्रकाश फीके पड़ गये। यह देख कर वे लोग बड़े अचम्भे में आये और सोचने लगे कि यह कैसी ज्योति है? हम लोगों ने ऐसी दिव्य ज्योति आज तक कभी न देखी थी, इसकी जाँच करनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने अग्निदेव को उस ज्योति के पास भेजा। अग्निदेव को अपने पास आते देख कर ज्योति ने आकाशवाणी के द्वारा उससे पूछा—"तुम कौन हो?" अग्नि ने कहा—मैं अग्नि हूँ।

ज्योति—तुममें क्या शक्ति है।

अग्नि—मैं चाहूँ तो क्षण भर में सारे ब्रह्माण्ड को जला कर भस्म कर दूँ।

ज्योति—अच्छा! इस तृण को जलाओ।—यह कह कर एक तिनका उसके आगे फेंक दिया। अग्निदेव बहुत चेष्टा करने पर भी उस तिनके को न जला सके। आख़िर वह लज्जित होकर देवताओं के पास लौट आये।

तब देवताओं ने वायु को उसके पास भेजा। ज्योति ने फिर उससे पूछा—तुम कौन हो।

वायु—मैं पवन हूँ।

ज्योति—तुममें क्या शक्ति है ।

वायु—मैं चाहूँ तो क्षण भर में सारे विश्वब्रह्माण्ड को उड़ाकर कहीं से कहीं ले जा सकता हूँ ।

ज्योति—अच्छा, इस तिनके को उड़ाकर दूर ले जाओ ।

वायु बहुत चेष्टा करने पर भी उस तिनके को ज़रा भी न हिला सके, दूर हटाने की कौन बात । पीछे लज्जित होकर वे भी अपनी जगह को लौट गये ।

तब स्वयं इन्द्र उस ज्योति के पास गये । बुद्धिरूपिणी भगवती के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रह्म ही वह ज्योति स्वरूप हैं । संसार में जो कुछ देख पड़ता है सबका मूल वही है । तब से देवताओं ने जाना कि उनकी निज की स्वतन्त्र शक्ति कुछ नहीं है । उसी मूलशक्ति से उन लोगों की शक्ति उत्पन्न हुई है । यह जान कर उनका अभिमान चूर चूर हो गया ।

यह कह कर सावित्री बोली—कहिए, यह कहानी कैसी अच्छी है ।

राजा—बहुत अच्छी । तुम जो इस तरह जी लगा कर शास्त्र पढ़ रही हो, इससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम्हारे पुण्य से मेरे वंश का गौरव बढ़ेगा ।—यह कह कर राजा ने रानी की ओर देखा । रानी ने उनका आशय समझ कर दासियों को टल जाने का इशारा किया । वे वहाँ से धीरे धीरे हट गईं । तब राजा ने सावित्री से कहा—बेटी, हम तुमसे कुछ कहना चाहते हैं ।

सावित्री—आज्ञा कीजिए, आपकी आज्ञा हम सबों को शिरोधार्य है ।

राजा—बेटी ! तुम अब व्याहने योग्य हुई, जिस उम्र में स्त्रियाँ

गृहस्थधर्म में प्रविष्ट होती हैं, वह उम्र अब तुम्हारी हो चुकी। अब तुम किसी योग्य वर की पत्नी होकर गृहस्थधर्म का पालन करो, यही हमारी इच्छा है। किन्तु बात यह है कि हमें तुम्हारे योग्य उपयुक्त वर नहीं मिलता, इसलिए तुम आप ही कोई वर पसन्द करो। हम उसके साथ बड़ी प्रसन्नता से तुम्हारा व्याह कर देंगे। यही तुमसे कहना था।

सावित्री सुन कर चुप हो रही। राजा ने फिर उससे कहा—इसमें संकोच करने की कोई बात नहीं। स्वयं पति-वरण करने की रीति हमारे क्षत्रिय-समाज में पूर्वकाल ही से प्रचलित है। यह कुछ नई रीति नहीं जिसके लिए हमें कोई हँसेगा। हम तुमको उसी पुरातन प्रथा के अनुसार चलने को कहते हैं। तुम अपने मन से देश-विदेश घूमो; शहर में, देहात में, या तपोवन में जहाँ तुम्हारे मनोनुकूल वर मिले, आकर हमसे कहो, हम तुम्हें उसके हाथ सौंप देंगे।

रानी—महाराज! सावित्री के इस प्रकार देश-देशान्तर घूमने में किसी विपद् की आशङ्का तो नहीं है?

राजा—विपद् की कोई आशङ्का नहीं। मेरा राज्य सुशासित है, इस कारण मेरे राज्य में शायद ही कोई उच्छृङ्खल और दुराचारी होगा। मैं प्रजाओं का पुत्रवत् पालन करता हूँ, इसलिए कोई मेरी कन्या के साथ कदापि अनिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता, मेरे पड़ोस के रहनेवाले राजा महाराजा सभी मेरे मित्रतासूत्र में बँधे हैं। इसलिए सावित्री उनके प्रजा-गणों से सम्मानित होगी। सावित्री अकेली तो जायगी नहीं। उसके साथ उसकी दो सखियाँ, उसकी दासी और मेरे बूढ़े मन्त्री सुप्रज्ञ भी जायँगे।

रानी—तो कोई चिन्ता नहीं । पीछे उन्होंने सावित्री की ओर देखकर कहा—बेटी ! रात अधिक बीती, तुम व्रती होकर दिन भर की भूखी प्यासी हो । अब जाकर सो रहो ।

सावित्री माता-पिता को प्रणाम करके सोने चली गई ।

विपाशा नदी के बायें किनारे कोसों तक घना जङ्गल है । उसके भीतर एक सुन्दर आश्रम है । किसी समय वशिष्ठ मुनि ने उसी आश्रम में तपस्या करके सिद्धि लाभ की थी, तब से वह आश्रम तपस्वी ऋषियों का निवासस्थान हो गया । वह आश्रम इतना प्रसिद्ध हुआ कि वानप्रस्थाश्रमी व्यक्ति भी वहाँ आकर आश्रय लेते थे और मुनियों के साथ रहते थे । देश-देशान्तर से अनेक विद्यार्थी आकर विद्या पढ़ते थे । इससे वह आश्रम सदा ही वेद-पाठ से प्रतिध्वनित होता रहता था । विद्यार्थी और ऋषिकुमारों में बड़ी प्रीति थी । वे सब एक साथ पढ़ते थे, एक साथ गुरु की गायें चराते थे, एक साथ होम की लकड़ी, कुश और फूल लाते थे । किसी को बीमारी होती थी तो सब उसकी शय्या के पास बैठकर उसकी सेवा करते थे । गाँव के लोगों में जो प्रेमभाव होना दुर्लभ है वह ऋषिकुमारों को तपोवन में सहज ही प्राप्त था । वे एक दूसरे की सहायता करके कृतार्थ होते थे ।

एक दिन किसी पर्व के कारण कितने ही ऋषिकुमार स्नान करने के लिए विपाशा नदी के तीर आये । उनमें कोई कोई विपाशा के स्वच्छ जल में स्नान करने लगे, कोई शिलाखण्ड पर बैठे कोई पीछे आते हुए मृग-शावकों के लिए कोमल घास लाने और कोई फूल तोड़ने लगे । दो ऋषिकुमार और साथियों से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर परस्पर बातचीत कर रहे

थे। दोनों का पहनावा ओढ़ावा और वयस एक होने पर भी दोनों के आकार में बड़ा अन्तर था। एक देखने में साधारण ऋषिकुमार के सदृश था; किन्तु दूसरे को देखने से वह ऋषि-कुलोत्पन्न नहीं जान पड़ता था। उसका लम्बा शरीर, विशाल वक्षःस्थल, कन्धा और बाहु पुष्ट थे। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग से कमनीयता के साथ बलिष्ठता प्रकट होती थी। दोनों गप-शप कर रहे थे। ऐसे समय में एक सवार हाथ में छड़ी लिये वहाँ आया और उच्च स्वर से बोला—ऋषिकुमारगण, मद्रदेश की राजकुमारी सावित्री देवी आज इस तपोवन में आई हैं। आप लोग उनका प्रणाम स्वीकार करें, यही मैं आप लोगों से कहने आया हूँ।

यह सुनकर पूर्वोक्त दोनों ऋषिकुमारों में एक ने दूसरे से कहा—मित्र सत्यवान्! देखो, मेरी बात सच हुई न? हम सब ब्राह्मण हैं, हम सबों का भाग्य सदा समान रहेगा। एक मुट्ठी चावल और कच्चे केले से ही हम लोगों को सांसारिक सब मनोरथ पूर्ण करना होगा। किन्तु तुम क्षत्रिय हो, तुम्हारा भाग्य परिवर्तनशील है। किसी युद्ध में पराजित होने से, सम्भव है, आज राजा से तुम भिक्षुक बन सकते हो और कल युद्ध में विजयी होने से एक बड़े राज्य के अधिपति हो सकते हो। यह जो राज-कुमारी आज तपोवन में आई है, कौन कह सकता है कि वह स्वयंवर की सभा में तुमको पसन्द न करेगी?

सत्यवान्—प्रिय सत्यव्रत! देखता हूँ, अब विद्यालाभ की अपेक्षा ब्राह्मणी-लाभ की इच्छा ही तुम्हारी बलवती हो रही है। तुम कहो तो यह संवाद कौशाम्बी में तुम्हारे पिता के पास भेज दूँ।

सत्यव्रत—ठहरिए, यह बात पीछे होगी। अभी घर पर

चलो। हम लोग तो भाई, तेल के अभाव से रूक्षकेशा, वस्त्र के अभाव से वल्कलधारिणी और व्रतोपवास से खिन्नशरीरा तपोवनवासिनियों को ही जन्म से देखते आते हैं। राजकुमारी कैसी होती है—कभी न देखी, चलो, एक बार देख लें। तुम्हारा तो राजकुल में जन्म है, कहो, क्या राजकुमारी के भी साधारण स्त्री की तरह दो हाथ और दो आँखें होती हैं?

सत्यवान्—हाँ मित्र! वैसे ही सब कुछ होते हैं। परन्तु हम लोगों को राजकन्या के दर्शन से क्या लाभ होगा।

देखो, सूर्यदेव माथे के ऊपर आ गये। अब दोपहर का समय हो गया। महर्षि यज्ञावशिष्ट हविष्य बाँटने के लिए अब हम लोगों की खोज करेंगे; हम सबों के जाने में विलम्ब होने से वे दुखी होंगे। चलो, झटपट स्नान करके आश्रम को लौट चलें।

दोनों नहाने के लिए नदी की ओर अग्रसर हुए। उसी समय सावित्री भी परिजनों से घिरी हुई घूमती फिरती उसी ओर आ निकली। जङ्गल का रास्ता स्वभावतः टेढ़ा मेढ़ा होता है। दो ओर से दो सड़कें आकर एक जगह मिल गई थीं। सावित्री और सत्यवान् दोनों की भेंट परस्पर ठीक उसी जगह आकर हुई। दोनों की चार आँखें बराबर हुईं। दोनों चित्रवत् खड़े होकर एक दूसरे को निर्निमेष नेत्र से देखने लगे। दोनों के हृदय में एक अपूर्व भाव का उदय हुआ। दोनों एक दूसरे का रूप देखकर मोहित हुए। कुछ काल दोनों विस्मित हो रहे। इसके अनन्तर जिस भाव का अनुभव उन दोनों के हृदय में कभी न हुआ था क्रमशः उसी भाव का अनुभव उन्हें होने लगा। दोनों के शरीर कण्टकित हुए, ललाट पर पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। पीछे संकोचवश दोनों उस स्थान को त्याग कर अपने

अपने गन्तव्य पथ की ओर जाने को उद्यत हुए, पर किसी के पैर आगे को न उठे। दोनों अपने अपने मन का भाव छिपाने की चेष्टा करने लगे किन्तु कृतकार्य न हो सके। ऋषिकुमार ने मित्र का भाव देखकर कहा—मित्र! गुरुदेव के यज्ञावशेष बाँटने का समय हो गया, आश्रम लौट चलने में विलम्ब क्यों कर रहे हो?

सावित्री की दासी भी सावित्री की ओर लक्ष्य करके बोली—राजकुमारी! तपोवन तो हम सब देख चुकीं, चलो अब हम सब दूसरी ओर चलें।

दासी का आशय समझ कर सावित्री बोली—बहुत दूर घूमने से मेरा शरीर थक गया है, चलो अब राजधानी लौट चलें।

दासी ने कहा—अच्छा, यही सही।

आज अश्वपति और दिनों की अपेक्षा पहले ही अन्तःपुर में आये हैं। आज उनका मुँह सूखा है, बारंबार तीव्र निःश्वास ले रहे हैं। मानो कोई कठिन मनस्ताप उनके हृदय को सन्तप्त कर रहा है। वे अपने शयनगृह में पलँग पर बैठे थे, उनके आने की ख़बर पाकर रानी भी उनके पास आई। उन्होंने राजा को चिन्तित देखकर पूछा—

"महाराज! आज आपको ऐसा उदास और शिथिल क्यों देखती हूँ? सावित्री अपने पसन्द का वर ठीक कर आई है। आपको अब आनन्दपूर्वक उसके ब्याह की तैयारी करनी चाहिए, या एकान्त में बैठ कर आँसू बहाना चाहिए! आपका ऐसा भाव देखकर मेरा जी बहुत व्याकुल हो रहा है। कहिए क्या हुआ है?"

राजा—क्या कहूँ? हमने सावित्री को स्वयं पति ढूँढ़ लेने का भार देकर भारी मूर्खता का काम किया। अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी।

रानी—क्या हुआ ? क्या सावित्री किसी अयोग्य वर को पसन्द कर आई है ?

राजा—नहीं, सावित्री वैसी नासमझ नहीं है। सावित्री ने वशिष्ठ के आश्रम में जाकर जिसे पति के योग्य चुना है, मन्त्री सुप्रज्ञ उसका पूरा परिचय लाये हैं। तुमने शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन का नाम कभी सुना होगा। बुढ़ापे में उन्हें अन्धा और उनके पुत्र को बालक देखकर दुश्मनों ने उनका राज्य हड़प लिया। वे इस समय स्त्री और बेटे को साथ ले वशिष्ठ के आश्रम में रहते हैं। सावित्री ने निर्वासित राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्य-वान् को पतिभाव से स्वीकार किया है।

रानी—सत्यवान् राज्य-धन से रहित है, क्या इसलिए आप इतना सोच कर रहे हैं ?

राजा—नहीं, इसके लिए मैं ज़रा भी सोच नहीं करता। मैं अपने दुःख का कारण तुमसे कहता हूँ, सुनो—आज देवर्षि नारद यहाँ आये थे, मैंने मन्त्री के मुँह से सत्यवान् और सावित्री के परस्पर अनुराग की बात सुनकर उनसे सत्यवान् के सम्बन्ध में पूछा था।

रानी—देवर्षि ने क्या कहा ?

राजा—उन्होंने कहा, रूप, गुण और शील में सत्यवान् के समान संसार में कोई नहीं है। सत्यवान् जितेन्द्रिय, क्षमाशील, मुनिवृत्त और उदाराशय है। किन्तु ये सब गुण रहने ही से क्या होगा ? एक प्रबल दोष ने सत्यवान् के सभी गुणों पर पानी फेर दिया है।

रानी—कैसा दोष ?

राजा—सत्यवान् अल्पायु है। देवर्षि ने कहा है, आज के वर्षवें दिन सत्यवान् की मृत्यु होगी।

सुनकर रानी चौंक उठीं, उनका सारा शरीर काँपने लगा। वे बड़ी अधीरता से बोलीं—महाराज! अब इसका क्या उपाय है?

राजा—उपाय तो और कुछ नहीं सूझता। यदि सावित्री दूसरा पति पसन्द करे तभी रक्षा है। नहीं तो हम लोग सदा के लिए शोक-समुद्र में निमग्न होंगे। तुम सावित्री को यहाँ बुलाओ, हम तुम दोनों उसे समझाकर देखें, शायद वह मान जाय।

रानी—मैं अभी उसे यहाँ बुला भेजती हूँ, किन्तु सावित्री के स्वभाव को मैं भलीभाँति जानती हूँ। उसका हृदय एक ओर कमल सा कोमल है, दूसरी ओर वज्र से भी कठोर है। वह जिसे धर्मसङ्गत समझेगी, प्राण जाते भी वह उसके विरुद्ध काम न करेगी। ईश्वर को जो करना होगा वही होगा।

माता-पिता की बुलाहट से सावित्री तुरन्त वहाँ आई, और उनको प्रणाम करके मीठे स्वर में बोली—आपने क्यों मुझे बुलाया है? क्या आज्ञा होती है?

राजा—"हाँ, बेटी! मैंने तुमको बुलाया है। तुम मेरे पास आकर बैठो।" इस प्रकार उसे अपने पास बिठा कर राजा ने स्नेह भरे स्वर में पूछा—तुम कई दिन तक कितने ही स्थानों से घूम कर आई हो, कहो, तुम्हें मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

सावित्री—नहीं पिताजी! मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ। बल्कि इतने दिन मेरे बड़े आनन्द में कटे। कितने ही सुन्दर देश, नदी और पहाड़ आदि देखने में आये। वह आपसे कहाँ तक कहूँ? कहीं कमलवन से सुशोभित सरोवर थे, कहीं खेतों में धान के

हरे पेड़ लहलहा रहे थे। कहीं झरनों से जल गिरने का मधुर शब्द सुनाई देता था। कहीं पहाड़ के ऊँचे शिखर पर मेघों की शोभा दिखाई देती थी। देहात में ये सब दृश्य कहीं दिखाई नहीं देते। देहातों में जहाँ देखिए वहीं मैले कुचैले लोगों की भीड़भाड़ और सड़कों पर धूल ही धूल दिखाई देती है। मेरा जी चाहता था, अगर माँ और आप मेरे साथ होते तो मैं यहाँ लौट कर न आती।

राजा—बेटी! तुम निर्विघ्न लौट आई, यह देख कर हम बहुत प्रसन्न हुए। अब तुमसे दो एक आवश्यक बातें कहनी हैं। तुमने जिसे पतिभाव से अङ्गीकार किया है, उसके सम्बन्ध में हमने सब बातें जानी हैं। तुम मेरे और अपनी माँ के अनुरोध से उसे त्याग कर दूसरा पति खोजो।

सावित्री पिता के कथन का कुछ उत्तर न देकर चुप हो रही। राजा ने फिर उससे कहा—बेटी! हम क्यों तुमसे यह कहते हैं, इसका कारण सुनो। आज देवर्षि नारद हमारे यहाँ आये थे। हमने सत्यवान् के विषय में उनसे पूछा था। वे उसके अनेक गुणों का वर्णन करके अन्त में बोले—"ये सब गुण रहने ही से क्या होगा? सत्यवान् अत्यन्त अल्पायु है। आज के पूरे बरसवें दिन उसकी मृत्यु होगी।" ऐसे अल्पायु वर को आत्मसमर्पण करने से केवल तुम्हीं को नहीं; तुम्हारे साथ हम लोगों को भी चिरकाल तक शोक-समुद्र में निमग्न होना पड़ेगा। अब भी समय है। तुम उससे विरत हो।

सावित्री के सिर से पैर तक मानो बिजली दौड़ गई। किन्तु उसके चेहरे पर कुछ विलक्षणता न देख पड़ी।

रानी बोली—सावित्री! महाराज जो तुमसे कह रहे हैं,

वह धर्मविरुद्ध कार्य नहीं है। कुमारी शतंवरा होती है। सैकड़ों जगह उसके ब्याह की बात होती है, परन्तु ब्याह एक ही वर के साथ होता है। तुमने सत्यवान् को देख कर उन्हें अपने योग्य वर निर्धारित-मात्र किया है। पति रूप में तो उनको स्वीकृत किया ही नहीं है। यदि करती तो भी तुम्हारा उन पर कोई अधिकार न था। कारण यह कि जितने दिन पिता कन्या का प्रदान न करे उतने दिन उसे किसी को पतिरूप से वरण करने का अधिकार नहीं। सत्यवान् अल्पायु है, यह जान कर जब उसके साथ तुम्हारा ब्याह होना हम सबों को पसन्द नहीं है तब सत्यवान् को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति को स्वीकार करने से तुम पाप-लिप्त नहीं हो सकतीं। सन्तानों के लिए माता-पिता का आज्ञा-पालन ही परम धर्म है। इसे तुम कभी मत भूलो।

सावित्री बैठी थी। उठ कर खड़ी हुई। उसने हाथ जोड़ कर बड़े विनीत स्वर में माता-पिता से कहा—मैं कभी आपकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। इस संसार में आप ही मेरे पूज्य देवता हैं। देवाज्ञा की भाँति आपकी आज्ञा का पालन करना ही मैं अपना परम धर्म समझती हूँ। किन्तु इस समय आप जो आज्ञा करते हैं, उसके पालन से केवल मैं ही नहीं, आप लोग भी पाप के भागी होंगे। मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार ही पति का निर्वाचन किया। अपनी इच्छा से कुछ नहीं किया है। कर्म अकर्म के सम्बन्ध में मन ही प्रमाण होता है। क्योंकि कर्म पहले मन ही के द्वारा निर्णीत होता है, पीछे वाक्य-द्वारा कथित होता है फिर क्रिया द्वारा सम्पादित होता है। लिखा भी है—

"यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत्कर्म्मणा करोति"

इसलिए जो बात मैं मन में स्थिर कर चुकी हूँ, वह एक प्रकार से हो गई समझिए। अब वे अल्पायु हों या दीर्घायु, वे मेरे पति हो चुके। उनका परित्याग करने से मैं अधर्मभागिनी हूँगी। आप कहते हैं, उनकी आयु एक वर्ष और है, बरसवें दिन उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी, यह न होकर यदि उनकी आयु एक ही दिन में पूरी हो जाती तो भी उनका त्याग मुझसे न हो सकता। बहुत क्या कहूँ, विवाह होने के पूर्व यदि मैं उनके अमङ्गल की बात सुन पाऊँगी तो मैं अपने को.........।

सावित्री इससे अधिक और कुछ न बोल सकी। उसका कण्ठ रुक गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। रानी बेटी की यह अवस्था देख कर स्थिर न रह सकी। उनकी आँखों में भी आँसू भर आये। वे सावित्री को खींच कर छाती से लगा उसकी आँखें पोंछने लगीं। पत्नी और पुत्री की दशा देखकर राजा की आँखें भी डबडबा आईं। रानी और राजा दोनों सावित्री का स्वभाव जानते थे, इसलिए उन्होंने उससे और कुछ कहने की आवश्यकता न समझी। राजा ने केवल उससे इतना ही कहा--बेटी! जो तुम्हारी इच्छा होगी, वही होगा। हम हृदय से आशीर्वाद देते हैं, यदि हमने मन, वचन और कर्म से सावित्री देवी की आराधना की होगी तो तुम्हें वैधव्य का क्लेश न भोगना पड़ेगा।

सावित्री पिता से आज्ञा ले अपने महल को गई। राजा अश्वपति ने तपोवन में द्युमत्सेन के पास दूत भेज कर सावित्री के ब्याह की आयोजना करने के लिए मंत्रियों को आज्ञा दी।

शुभ दिन शुभ घड़ी में बड़ी धूम-धाम से सत्यवान् के साथ सावित्री का ब्याह हो गया। राजा अश्वपति ने बन्धु-बान्धवों को

साथ ले तपोवन में जाकर कन्यादान किया। कई दिनों तक तपोवन आनन्दोत्सव से भरा रहा। विद्यार्थी राजा के दिये हुए भाँति भाँति के मिष्टान्न पान से, आश्रमवासी विविध प्रकार के खेल-तमाशे देखने से और ऋषि-पत्नी और ऋषिकन्यायें बहुमूल्य भूषण-वसन के लाभ से तृप्त हुईं। भूषण-वस्त्र के व्यवहार के कारण भारी कौतुक हुआ। तपोवन की रहनेवाली स्त्रियों ने पहले कभी वैसे आभूषण न देखे थे। इसलिए किसी ने किङ्किणी को कण्ठ में और कण्ठ-भूषण को बाँह में पहना। किसी ने वेसर को कान में और कान के भूषण को नाक में पहन लिया। यह विचित्र लीला देख कर रानी के साथ की स्त्रियों ने बड़े कष्ट से हँसी रोकी। कई दिन तपोवन में रह कर रानी और राजा आँसू भरी आँखों से बेटी और दामाद के निकट से बिदा हो राजधानी को लौट आये।

सावित्री के पदार्पण के साथ ही द्युमत्सेन के आश्रम ने नई शोभा धारण की। कुटी के चारों ओर की जगह खूब साफ़-सुथरी रहने लगी। आँगन रोज़ रोज़ लीपा जाने लगा। एक भी कंकड़ या काँटे का पेड़ घर के पास न रहा। आश्रम के लता-वृक्ष फल-फूलों से अधिक सुशोभित हुए। होम की गाय अधिक दूध देने लगी। अतिथिगण पूर्व की अपेक्षा भोजन सत्कारादि से अधिक तृप्त होने लगे। राजा द्युमत्सेन और उनकी पत्नी को नववधू की सेवाभक्ति से शरीर में नये बल और हृदय में नवीन स्फूर्ति का अनुभव होने लगा। सावित्री को पाकर सत्यवान् को कितना हर्ष हुआ, इसका वर्णन नहीं हो सकता। दरिद्र यथेच्छ धन पाकर, रोगी पूर्ण रूप से आरोग्य लाभ करके; विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके और साधक-जन सिद्धि पाकर जो सुख पाते

हैं, सत्यवान् ने सती सावित्री को पाकर वही सुख पाया। वे मन ही मन में सोच कर पुलकित होते थे कि मैंने पूर्व जन्म में कौन ऐसा पुण्य किया जिसके फल से विधाता ने मुझको सावित्री सी पतिव्रता स्त्री दी। सावित्री के साहचर्य से उनके स्वाभाविक सभी गुण और भी सजीव हो उठे। शास्त्रपठन में उनकी निष्ठा और भी बढ़ गई। जीवों पर दया और तपश्चर्या में एकान्तिक प्रीति विशेष रूप से उत्पन्न हुई। वे सोचते थे, सावित्री के पति होने के कारण अब मुझे गुण, ज्ञान और धर्म की विशेष योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। मुझे अपने को अधिक श्रेष्ठ बनाना उचित है।

जो अपने गुण से आश्रम के पालित हिरन से लेकर स्वामी-पर्यन्त सबको प्रसन्न किये रहती थी, उसके मन की अवस्था भी एक बार देखनी चाहिए। सावित्री भी योग्य पति पाकर बहुत प्रसन्न हुई; प्रसन्न ही नहीं, वह अपने को परम कृतार्थ मानती थी। वह राजकन्या थी। घर का काम करने का उसे अभ्यास न था। किन्तु आश्रम में आते ही वह इस आनन्द और उत्साह के साथ काम करने लगी जो गृहस्थ की स्त्रियों से भी होना कठिन था। जो काम गृहस्थ की स्त्रियाँ सहसा नहीं कर सकती थीं वह सावित्री सहज ही कर लेती थी। जाड़े के दिनों में वह खब सवेरे विपाशा से पानी ले आती थी, प्रचण्ड ग्रीष्म काल में वह आग के नज़दीक बैठ कर रसोई बनाती थी। उसे काम करने में क्लेश होता है, इस आशंका से कहीं उसकी बूढ़ी सास स्वयं कोई काम न करें, यह सोच कर वह घर के सब काम पहले ही कर लेती थी। वह सास को कोई काम करने का अवसर न देती थी। उसकी मीठी बातों से उसके बूढ़े सास-ससुर

के हृदय-प्राण शीतल होते थे। उसका प्रसन्न मुखमण्डल उसके पति के शयनागार को प्रकाशमान कर देता था। सावित्री का पवित्र आचरण देख कर यही जान पड़ता था जैसे उसको तपोवन के निवास में जन्म ही का अभ्यास हो।

किन्तु दोपहर में दिन की जलती धूप में भी जैसे मेघ की छाया कभी कभी धरती को मलिन कर डालती है वैसे ही उस आनन्द से भरे हुए आश्रम में भी दारुण विषाद बीच बीच में सावित्री के हृदयाकाश को अन्धकार से भर देता था। घर का काम करते करते सावित्री कभी कभी तीव्र साँस लेने लगती थी, स्वामी के साथ प्रेमालाप करते समय कभी कभी उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। स्वामी के निद्रित होने पर वह उनके पास बैठ कर अनिमेष दृष्टि से उनका मुँह निहारा करती थी। बीच बीच में वह उनकी नाक के पास हाथ रख कर इस बात की परीक्षा करती थी कि उनकी साँस चलती है या नहीं। कभी सावित्री का गर्म आँसू छाती पर गिरने से गाढ़ निद्रा में सोये हुए सत्यवान् चौंक उठते थे। सावित्री का शरीर दिन दिन दुबला और मुख की कान्ति मलिन होती जाती थी। वह दिन दिन क्यों ऐसी क्षीण होती जाती है इसका कारण कोई न जानता था। ऋषियों की पत्नियाँ सोचती थीं, सावित्री राज-कुमारी है, जन्म से राज-सुख भोगती आई है, तपोवन के क्लेश से उसकी ऐसी दशा है। वे सब दया से द्रवित होकर जब घर के काम में सावित्री की सहायता करने आती थीं तब सावित्री हाथ-जोड़ कर बड़े विनयभाव से उन्हें रोकती थी। सावित्री की सास यह देखकर कि बेटे पतोहू में अनुराग पूरा है तो भी बहू सोच से दिन दिन दुबली होती जाती है, विस्मित होती थी।

इसका कारण उसकी समझ में न आता था। ऋषिपत्नियों की भाँति वह भी यही समझती थी कि तपोवन के कष्ट से ही बहू इस तरह सूखी जा रही है। सावित्री आश्रमस्थित एक साखू के पेड़ में दूसरे की आँख बचा कर प्रतिदिन सिन्दूर की लकीर खींचती थी। उसकी बूढ़ी सास देखती थी, बहू बीच बीच में सहसा घर का काम छोड़ कर लकीरें गिनने जाती है और वहाँ से आँसू बहाती हुई लौट कर फिर अपना काम करती है। वह इसका मतलब नहीं समझती थी। वह यही सोच कर चुप हो रहती थी कि सावित्री ने पिता के घर में कोई व्रत ठाना होगा, वही साखू के पेड़ में सिन्दूर की लकीर खींच कर गिना करती है। वह प्रतिदिन इष्टदेव से प्रार्थना करके कहती थी—भगवन्! मैं अपने लिए कोई सुख या कोई भोग नहीं चाहती हूँ। अगर आपकी कृपा मुझ पर हो तो मैं यही चाहती हूँ कि मेरी सुशीला वधू सावित्री साल्व देश के सिंहासन पर बैठे। मैं पहले यह अपनी आँखों देख लूँ तब मरूँ—इस प्रकार सास-ससुर की सेवा में रह कर सावित्री का दिन सुख दुःख से बीतने लगा।

योंही दिन पर दिन बीतते बीतते वर्ष पूरा हो चला। नारद ने जिस भयङ्कर रात में सत्यवान् की जीवनलीला समाप्त होने की बात कही थी, वह समय समीप आ पहुँचा। सावित्री ने अपने पति की मृत्यु होने के तीन दिन पूर्व ही से त्रिरात्रोपवास व्रत आरम्भ कर दिया। राजा द्युमत्सेन ने सावित्री के इस कठोर व्रत ठानने की बात सुन कर उससे कहा—"बहूजी! तुमने बड़ा ही कठिन व्रत ठाना है, तीन दिन बिना अन्न जल के रहना बहुत कठिन है। तुम्हारा सुकुमार शरीर क्या ऐसा कठोर कष्ट सहने योग्य है?" सावित्री ने कहा—"आप चिन्ता न करें, आपके

आशीर्वाद से कठिन होने पर भी मैं इस व्रत को बड़ी आसानी से पूरा कर लूँगी ।" क्रमशः नारद का बताया हुआ वह दिन आया। सावित्री ने खूब तड़के उठ कर प्रातःकृत्य से निश्चिन्त हो धधकती हुई आग में यथा-विहित हवन किया। आश्रम के निवासी तपस्वीगण और उसके सास-ससुर ने "सौभाग्यवती भव" कह कर आशीर्वाद दिया। सावित्री ने "तथास्तु" कह कर मन ही मन गुरुजनों के उस आशीर्वाद को ग्रहण किया।

इसी समय सत्यवान् सूखी लकड़ी लाने के लिए कन्धे पर कुल्हाड़ी रख जङ्गल को रवाना हुआ। सावित्री उसके साथ जाने के हेतु उद्यत हुई। यह देख कर उसके सास-ससुर ने स्नेह भरे स्वर में कहा—तीन रात के उपवास से तुम सूख कर काँटा हो गई हो, जङ्गल का रास्ता बड़ा ही बीहड़ है। कहीं ऊँची-नीची ज़मीन है, कहीं काँटे ही काँटे हैं। सत्यवान् अभी लौट आवेगा। तुम आज उसके साथ वन जाने का विचार न करो।

सावित्री ने बड़े विनीत भाव से सास से कहा—माँ, मैंने जो व्रत किया है, उसमें स्वामी के साथ सदा रहने का नियम है। वन जाने में मुझे कुछ क्लेश न होगा। आप अनुग्रह करके मुझे स्वामी के साथ वन जाने की आज्ञा दीजिए।

सावित्री की विनय-वाणी सुन कर सास-ससुर ने उसे वन जाने की आज्ञा दे दी। सावित्री प्रसन्न मन से सत्यवान् के साथ वन गई। वन की शोभा देख कर दोनों के हृदय आनन्द से उमँग उठे। कहीं भाँति भाँति के जङ्गली फूल खिले हुए हैं, जिनके सुगन्ध से चारों ओर आमोदित हो रही है, कहीं पूँछ पसार कर मयूर-गण नाच रहे हैं, कहीं झुण्ड के झुण्ड हिरन स्वच्छन्द होकर

घूम रहे हैं। ये सब दृश्य देखते हुए दोनों आगे बढ़े। कौन जाने, कब क्या होगा, इस भय से सावित्री के प्राण क्षण क्षण में उड़ रहे थे। किन्तु सत्यवान् यह नहीं जानते थे। वे कभी सावित्री को जङ्गल की शोभा दिखलाकर, कभी जङ्गली पशुओं की कृति वर्णन करके और कभी उसके साथ प्रीतिपूर्वक रहस्य संभाषण कर उसके मन को बहला रहे थे। एक बार उन्होंने कहा—

"प्रिये! मैं बार बार सोच कर भी इसका निश्चय नहीं कर सकता कि तुमने क्या देख कर मेरे सदृश तुच्छ व्यक्ति को पति बनाया।"

सावित्री—प्राणनाथ! यदि आप स्त्री होते तो आप इस बात को समझ सकते। पुरुष होकर रमणी के मन का भाव आप कैसे जानेंगे?

सत्यवान्—मुझसे व्याह न करके यदि तुम दूसरे राजकुमार के साथ व्याह करतीं तो तुम्हें आज इतना क्लेश नहीं होता। मेरे दुर्भाग्य-दोष से तुम एक दिन भी सुखपूर्वक न रह सकीं। मैं तुमको कोई सुख न दे सका।

सावित्री—नाथ! क्या रोज़ रोज़ यही एक बात कहिएगा। मैंने कई बार आपसे विनती की है कि मुझसे यह बात न कहिए। ऐसा आप क्यों कहते हैं? मुझे किस बात का दुःख है? धन-रत्न का? आपकी प्रेम-सम्पत्ति पाकर मैं अपने को इन्द्राणी से भी बढ़कर भाग्यवती समझती हूँ। स्त्रियाँ भूषण क्यों पहनना चाहती हैं? स्वामी, के मन को रिझाने के लिए। जब बिना गहने के ही मैं आपके मन को लुभाये रहती हूँ तब यदि सारे संसार के राजाओं की सम्पत्ति इकट्ठी की जाय तो उसे मैं आपके चरण की धूल की एक कण के बराबर भी न समझूँगी।

सत्यवान् ने बड़े प्यार से पत्नी को छाती से लगाया और कहा——प्यारी ! मैं यथार्थ में बड़ा भाग्यवान् हूँ, नहीं तो तुम्हारी सी स्त्री-रत्न मुझे कहाँ मिलती ?

सामने एक सूखा पेड़ देख कर सत्यवान् उसे काटने को उद्यत हुए। दो एक बार कुल्हाड़ी चलाने के साथ उनका जी घूमने लगा और सारा शरीर काँपने लगा। अकस्मात् दारुण शिरः-पीड़ा ने उन्हें अचेतन कर दिया। उनकी आँखों के सामने चारों ओर अन्धकार छा गया। वे खड़े न रह सके, पत्नी से कहा कि मुझे शीघ्र सँभालो।

इतना कह कर वे गिरने को ही हुए कि सावित्री पहले ही से सावधान थी, उसने झट पति को दोनों हाथों से पकड़ कर गिरने से बचा लिया और छाती से लगा कर पेड़ के नीचे ले आई। वहाँ उन्हें धीरे धीरे लिटा उनका मस्तक अपनी गोद में रख कर आँचल के वस्त्र से उनके मुँह पर हवा करने लगी। शिरोवेदना से अत्यन्त व्यथित होने के कारण स्वामी का मुँह इतना उदास हो गया जिसे वह न देख सकी, थोड़ी देर के लिए उसने आँखें बन्द कर लीं। आँख खोलते ही उसने देखा; सत्यवान् काठ की तरह निश्चेष्ट पड़ा है, नाक के पास हाथ रख कर देखा, साँस नहीं, हृदय निस्पन्द और आँखें पलक-रहित हो गईं। सावित्री समझ गई, नारद का वाक्य सत्य हुआ।

संसार में ऐसा कौन कवि, या चित्रकार है जो सावित्री की उस समय की अवस्था का वर्णन कर सके, या चित्र खींच कर उसकी असली दशा दरसा सके। वनभूमि स्वभावतः भयानक होती है। संध्या का समागम होते ही उसने और भी भयानक रूप धारण किया। थोड़ी ही देर में चारों ओर गाढ़ अन्धकार

छा गया। मानो सारा जङ्गल अन्धकार के समुद्र में डूब गया। बात-चीत करते करते वे दोनों आश्रम से बहुत दूर निकल आये थे। वह स्थान ऐसा निर्जन था कि कहीं मनुष्य की बोली तक सुनाई न देती थी। कभी कभी दूर से वन्य पशुओं का भीषण चीत्कार सुन पड़ता था और हवा की झोंक से पेड़ों के परस्पर संघर्षण होने के कारण एक विचित्र ही विकट शब्द उत्पन्न होता था। किन्तु सावित्री आज निर्भय है। उसके सभी मनोरथ और सुख की कामनायें भङ्ग हो गई हैं। इसलिए अब उसे भय किस बात का हो? उसके नेत्र में आँसू नहीं है, मानो वह हृदय के ताप से बीच ही में सूख जाने के कारण आँखों तक आने नहीं पाता। उसकी साँस भी रुक रुक कर चलती है! हा! जिस राजकुमारी ने कभी दुःख का मुँह तक न देखा था, वह आज एक निर्जन वन में रात को अकेली अपने मृत पति के मस्तक को गोद में लिये बैठी है। इससे बढ़ कर शोक का अवसर और क्या होगा? इसी अवस्था में उसने पास ही एक पेड़ के नीचे एक अपूर्व मूर्त्ति देखी। घोर अन्धकार में भी वह उसे स्पष्ट देख पड़ी। वैसी अद्भुत मूर्त्ति आज तक उसने कभी न देखी थी। अधिक ध्यान देकर देखने से जान पड़ा कि वह मूर्त्ति केवल एक छायामात्र है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग रहने पर भी उसके और मनुष्य के आकार में बहुत भेद है। सावित्री ने सोचा, क्या मैं यह स्वप्न देख रही हूँ, परन्तु कुछ ही देर में उसने देखा, यह मूर्त्ति सत्यवान् के निश्चेष्ट शरीर के समीप खड़ी है। स्वप्न का सन्देह जाता रहा। उसने वेदान्त पढ़ते समय नाचिकेतोपाख्यान में जो मृत्यु देवता की कथा पढ़ी थी, क्या यह वही कालपुरुष तो नहीं है? सावित्री ने मन में सोचा, यदि वे हों तो अच्छा ही है। इधर वह छाया-

मयी मूर्त्ति इस तीव्र दृष्टि से सावित्री की ओर देख रही थी कि वह स्थिर न रह सकी। वह धीरे धीरे स्वामी के मस्तक को गोद से नीचे उतार कर उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ कर बड़े विनीत भाव से उस मूर्त्ति से पूछा—आप कौन हैं ? आपकी अमानुषी मूर्त्ति देखने से जान पड़ता है जैसे आप देवता हों, आप मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए और अपना परिचय दीजिए कि आप कौन हैं, किस लिए यहाँ आये हैं ?

छायामयी मूर्त्ति ने कहा—मैं यम हूँ, तुम्हारे स्वामी सत्यवान् की आयु पूरी हो गई। इसी से मैं उसे लेने आया हूँ।

यह कह कर यम धीरे धीरे सत्यवान् के निश्चेष्ट शरीर की ओर अग्रसर हुआ। सावित्री ने देखा, यम का स्पर्श होते ही सत्यवान् की देह से एक अपूर्व पुरुष के आकार का तेज निकला और साथ ही उसके सत्यवान् का शरीर विवर्ण और डरावना सा हो गया। यम उस अङ्गुष्ठपरिमाण तेजोमय पुरुष को पकड़ कर दक्षिण दिशा की ओर ले चला। सावित्री भी उसके पीछे पीछे चली। कुछ दूर आगे जाकर यम ने देखा, सावित्री उसके पीछे आरही है। तब उसने कहा—सावित्री, तुम लौट जाओ, अपने स्वामी का दाह कर्म आदि करो।

सावित्री—मेरे स्वामी को आप जहाँ लिये जा रहे हैं, मेरा भी वहीं जाना उचित है। पण्डितों ने गृहस्थ धर्म के पालन ही को ज्ञानलाभ का प्रधान सोपान बतलाया है। मैं ज्ञानलाभ की आशा से स्वामी के साथ गृहस्थधर्म्म का पालन कर रही थी। आप धर्मराज होकर अचानक मेरे पति को ले जाकर मेरे धर्माचरण में बाधा डालना चाहते हैं ? जहाँ आप मेरे स्वामी को लिये जा रहे हैं वहाँ मुझे भी ले चलिए।

यम—सुशीले ! मैं तुम्हारी युक्तियुक्त धर्मसङ्गत बात से वहुत प्रसन्न हुआ। सत्यवान् के जीवन से भिन्न तुम जो वर माँगोगी वह मैं तुमको दूँगा।

सावित्री ने ससुर का अन्धापन दूर होने की प्रार्थना की। यम "तथास्तु" कह कर आगे बढ़ा और सावित्री से कहा कि तुम मार्ग चलते चलते थक गईं अब लौट जाओ।

सावित्री बोली—जब मैं अपने स्वामी के पास हूँ तब मार्ग चलने का कुछ क्लेश मुझे नहीं है। स्वामी ही मेरे एकमात्र गति हैं। आप जहाँ इनको लिये जा रहे हैं वहाँ मुझे भी जाने की आज्ञा कीजिए। साधुजनों की संगति कभी व्यर्थ नहीं होती, इसलिए जब भाग्य से आपके दर्शन हुए, तब आपका साथ छोड़ना उचित नहीं, आपकी कृपा से मुझे पति की सेवा करने का भी अवसर मिलेगा।

यम—"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" तुम्हारी मधुर तथा हित की बात सुन कर मुझे बड़ी तृप्ति हुई। तुम सत्यवान् के जीवन से भिन्न जो वर चाहो, माँगो।

सावित्री ने ससुर को फिर से राज्य प्राप्त होने की प्रार्थना की। यम ने कहा—"ऐसा ही होगा।"

इसके अनन्तर सावित्री ने फिर प्रिय वचन से यम को प्रसन्न करके उसी से "पिता बहुपुत्रवान् हों" यह तीसरा वर माँगा।

यम ने यह वरदान भी दिया। तो भी सावित्री को लौटते न देख कर उसने उससे कहा—राजकुमारी! तुम्हारी सब कामनायें पूर्ण हुईं अब तुम घर लौट जाओ। बातों में उलझ कर तुम बहुत दूर आ गईं।

सावित्री—जब मेरी आँखों के सामने मेरे स्वामी विराजमान हैं तब मैं बहुत दूर कैसे आई। यह दूर कैसे हुआ। मैं इनके साथ दूरातिदूर जाने को तैयार हूँ। आप निष्पक्षपात होकर धर्मपूर्वक प्राणी-मात्र का शासन करते हैं इसी से आपका नाम धर्म्मराज प्रसिद्ध है, आप साधु हैं, साधु के ऊपर विश्वास करने से कभी धोखा खाना नहीं पड़ता। इसीलिए मैं आपके ऊपर विश्वास करके आपके साथ चली हूँ।

यम—प्रियवादिनी! मैं तुम्हारे मुँह से जैसी मीठी बात सुन रहा हूँ, कभी किसी के मुँह से न सुनी। सत्यवान् के जीवन के अतिरिक्त तुम जो वर माँगना चाहो माँग लो।

सावित्री बोली—यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए जिसमें मेरे गर्भ से मेरे पति सत्यवान् से एक सौ बलिष्ठ पुत्र उत्पन्न हों।

यम—अच्छा, वही होगा। अब तुम लौट जाओ, वृथा परिश्रम उठाने की आवश्यकता नहीं।

सावित्री—धर्मराज! मैं अब कृतार्थ हुई, मेरा मनोरथ सफल हुआ। किन्तु बिना पति के मैं किसी सुख-सम्पत्ति, यहाँ तक कि स्वर्गलोक की भी अभिलाषिणी नहीं हूँ। आपने मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया है, इधर मेरे पति को आप लिये जा रहे हैं, जिसमें आपका वाक्य सत्य हो सो कीजिए। सत्यवान् को न जिलाने से आपका वरदान कैसे फलित होगा?

यम—सतीशिरोमणि! मैं अब समझ गया। सती के समीप मृत्यु को भी हार माननी पड़ती है। यह लो, अपने स्वामी को ले जाओ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम पति के सुख से सर्दा

होकर पुत्र-पौत्रादि के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर अन्त में पतिव्रता का लोक प्राप्त करो।

यह कह कर यमराज सत्यवान् के शरीर से निकाले हुए उस तेजोमय पुरुष को सावित्री के हाथ में सौंप कर अन्तर्हित हुए। सावित्री भी उन्हें प्रणाम करके जहाँ सत्यवान् का शव था, आई। उस तेजोमय मूर्ति का स्पर्श होते ही सत्यवान् के शरीर में पुनः जीवन का सञ्चार हुआ। उन्होंने आँख खोल कर सावित्री से कहा—प्यारी ! देखो, मैं शिरःपीड़ा से व्याकुल हो गाढ़ निद्रा में सो गया था। इतनी रात हो गई, तुमने मुझको जगा क्यों नहीं दिया ?

सावित्री—आपको अस्वस्थ देख कर मुझे आपको जगाने का साहस नहीं हुआ। अभी चारों ओर इस अन्धकार में जङ्गली हिंस्र जन्तु घूम रहे हैं, इनके बीच से होकर जाना ठीक नहीं। आज हम और आप किसी तरह यहीं रात बितावेंगे। कल सवेरे ही आश्रम को जायँगे।

इधर धर्मराज के वर से राजा द्युमत्सेन को आँखें मिल गईं। इस आकस्मिक सौभाग्य से उनके और रानी के आनन्द तथा आश्चर्य की सीमा न रही। किन्तु बेटे और पतोहू के जङ्गल से आने में विलम्ब देख वे दोनों बड़े व्याकुल हुए। तपोवन के लोग उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना देने लगे। उन दोनों ने जग कर रात बिताई। भोर होते ही सावित्री और सत्यवान् आश्रम में आ पहुँचे। खोये हुए रत्न को पाकर जैसे रंक आनन्दित होता है, वैसे ही रानी और राजा, बेटे-पतोहू को देख कर आनन्दित हुए। आश्रमनिवासी ऋषिमुनिगण द्युमत्सेन को अकस्मात् दृष्टि प्राप्त होते देख आश्चर्यान्वित हुए थे। इस समय सावित्री के

मुँह से सब वृत्तान्त सुन कर वे लोग उस पतिव्रता को बार बार धन्यवाद देने लगे। यमराज ने कहा था कि द्युमत्सेन फिर अपना खोया हुआ राज्य पावेगा। उसकी बात शीघ्र ही सफल हुई। द्युमत्सेन के एक विश्वासी मन्त्री ने युद्ध में शत्रु को पराजित कर विजय प्राप्त किया। उनको राजधानी में ले जाने के लिए वह पुरवासियों के साथ तपोवन में उपस्थित हुआ। राजा द्युमत्सेन और उनकी रानी ने ऋषि और ऋषिपत्नियों से आसीस ले बेटे तथा पतोहू के साथ राजधानी को प्रयाण किया। माता-पिता की अनुमति से सत्यवान् सिंहासन पर आरूढ़ हो सावित्री के साथ बड़े आनन्द से राज्य का सुख भोगने लगे। यमराज के वरदान से सावित्री के पिता अश्वपति ने भी बहु-पुत्रलाभ से अपने जन्म को सार्थक समझा। सावित्री के पातिव्रत धर्म से सभी के मनोरथ सफल हुए। जो लोग धर्म की रक्षा करते हैं, उनकी विपत्काल में धर्म ही सहायता करता है।

पाँचवाँ आख्यान

दमयन्ती

भारतवर्ष के मानचित्र (नक़्शा) में जो प्रदेश इस समय बरार के नाम से प्रसिद्ध है, वह पूर्वकाल में विदर्भ नाम से पुकारा जाता था। किसी समय उस विदर्भ देश में भीमदेव नाम के एक प्रजाहितैषी राजा राज्य करते थे। कुण्डिनपुर उनकी राजधानी थी।

विदर्भदेश धन-सम्पत्ति में भारतवर्ष के सब देशों में बढ़ा-चढ़ा था। ऐसी कोई फ़सल नहीं जो विदर्भ में उत्पन्न न हो। वर्ष के भीतर जभी खेतों की ओर दृष्टि दीजिए तभी धान के पेड़ से खेत हरे भरे नज़र आवेंगे। विशेष कर शरद् ऋतु में वहाँ के खेतों की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। श्यामलाङ्गी प्रकृति अपने मधुर हास्य से उस ऋतु में मानों दसों दिशाओं को विकसित किये रहती थी। तापी, भद्रा और पूर्णा आदि नदियों ने अनेक मार्ग से प्रवाहित होकर विदर्भ भूमि को सुजला और सुफला बना रक्खा था। विदर्भदेश के निवासीगण बड़े परिश्रमी और साहसी होते थे, इस कारण वहाँ घर घर में लक्ष्मी विराज-मान थी।

राजा भीम के ऐश्वर्य की सीमा न थी। किन्तु अतुल ऐश्वर्य रहने ही से क्या? यदि उसका भोगनेवाला कोई उत्तराधिकारी सुपुत्र न रहा। ढेर के ढेर मणि-मोतियों से उनका घर जगमगाता था, किन्तु बालक-बालिकाओं की मीठी मीठी मुसकुराहट से वह कभी सुशोभित न होता था। गायक-गायिकागण वहाँ नित्य गान करते थे किन्तु बच्चों की तोतली बोली से वह स्थान कभी सुधासिञ्चित नहीं होता था। उनके सभागृह में नर्तक-नर्तकीगण नाच करके लोगों का मनोरञ्जन करते थे, किन्तु बालक-बालिकाओं के खेल-कूद से वह कभी विनोदमय नहीं होता था। बहुत परिजनों के बीच में रहकर भी रानी और राजा अपने को बन्धुयान्धवविहीन समझते थे और कभी कभी उनके जी में होता था कि इस शून्य राजभवन के निवास से वन में जाकर रहना अच्छा है।

योंही बहुत दिन बीतने पर दमन नाम के एक मुनि राजा भीम के यहाँ आये। राजा और रानी ने पूर्ण रूप से उनका आतिथ्य-सत्कार किया। उन दोनों दम्पती की भक्ति और सेवा से प्रसन्न होकर बिदा होने के समय मुनि ने राजा से कहा—महाराज! मैं आपकी और आपकी रानी की भक्ति से बहुत सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद करता हूँ। आपके तीन पुत्र और एक कन्या-रत्न उत्पन्न होंगे।

मुनि के वरदान से रानी ने क्रमशः तीन पुत्र और एक कन्या प्रसव की। दमन मुनि के अनुग्रह से ये सन्तानें उत्पन्न हुई थीं इसलिए राजा ने पुत्रों के नाम दम, दान्त और दमन रक्खे। कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा। सुन्दर कुमारों और राजकुमारी को देख कर राजा और रानी ने अपने को कृतकृत्य माना।

विदर्भ की राजकुमारी रूप गुण के लिए सदा से प्रसिद्ध थी। अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा इसी विदर्भराजकुल में उत्पन्न हुई थी। महाराज रघु की पुत्रवधू अज की धर्मपत्नी कमलकोमलाङ्गिनी इन्दुमती और लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी देवी ने भी इसी विदर्भराज के वंश में जन्म लिया था। इसलिए दमयन्ती जो रूप गुण में और राजकुमारियों से बढ़ जायगी यह कुछ असम्भव न था। किन्तु दमयन्ती को देखकर विदर्भदेश के बड़े बूढ़े लोग भी कहते थे कि "ऐसी सुन्दरी लड़की इस वंश में कभी उत्पन्न नहीं हुई थी।"

दमयन्ती ने जब क्रमशः यौवन की सीमा में पैर रक्खा तब राजा ने उसके रहने के लिए महल के भीतर एक स्वतंत्र घर दे दिया। दमयन्ती वहाँ सखी सहेलियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगी। वह कभी सखियों के साथ महल के भीतर के पोखर में जलक्रीड़ा करती, कभी फुलवाड़ी में घूमने जाती और कभी हरिमन्दिर में बैठ कर शास्त्र-पुराण सुनती थी। दमयन्ती की सखियाँ उस पर बड़ी प्रीति रखती थीं। वे गान-वाद्य और मीठी बातों से सदा उसका जी बहलाती थीं।

राजधानी में धनवान्, बलवान् और धर्मात्मा आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों की बातें चलती ही रहती हैं। कहाँ किस धनाढ्य ने एक अनुपम बाग़ लगाया है। किसने कौन बहुमूल्य घोड़ा या हाथी मोल लिया है, किस राजकुमार ने अस्त्रपरीक्षा में सबको परास्त किया है और कहाँ किस राजा ने यज्ञ करके अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दे दिया है। राजा के अन्तःपुर में रहनेवाली स्त्रियाँ इन्हीं सब बातों को लेकर आपस में बातें किया करती थीं। उन अनेक प्रसिद्ध लोगों के बीच एक व्यक्ति का नाम दमयन्ती

को बराबर सुन पड़ता था। असाधारण काम से लेकर साधारण काम तक अनेक विषयों में लोग उनका नाम लेते थे। यदि किसी ब्रह्मज्ञानी या वेदवेदान्त के जाननेवाले व्यक्ति की बात छिड़ती थी तो राज-पुरोहित झट बोल उठते थे, "इस विषय में निषध-देश के राजा नल की बराबरी करनेवाला कोई नहीं है।" यदि किसी राजा की सत्यनिष्ठा की बात चलती थी तो राजसभा के सदस्य कहते थे —"राज्यशासन के लिए कौन ऐसा राजा होगा जो दो एक झूठी बातें न बोलता होगा, परन्तु राजा नल ही एक-मात्र ऐसे राजा हैं जो कभी किसी के साथ झूठ नहीं बोलते।" यदि किसी सारथि को, रथ चलाने में त्रुटि होने के कारण, फटकार बताई जाती थी तो वह यही कहता था —"मैंने महाराज नल के यहाँ सारथि का काम किया है। महाराज ने स्वयं मुझको घोड़ा हाँकने की शिक्षा दी है। सारथ्यकार्य में उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है।" यदि रानी किसी रसोइए से अधिक वेतन माँगने का कारण पूछती थी, तो वह कहता था—"मैं तीन वर्ष से अधिक समय तक महाराज नल के यहाँ प्रधान रसोइया था। महाराज ने स्वयं मुझको रसोई बनाना सिखलाया है। अगर मैं आपको और महाराज को रसोई जिमा कर तृप्त न कर सकूँ तो आप एक पैसा भी मुझे वेतन न दें।"

उम्र बढ़ने के साथ दमयन्ती मन ही मन सोचती थी, जिस माननीय महापुरुष की प्रशंसा मैं इतने दिन से सुनती हूँ वे कौन हैं? ब्रह्मज्ञानी की चर्चा चलती है, तो लोग उन्हीं का पहले नाम लेते हैं। प्रजावत्सल राजाओं में वही मुख्य गिने जाते हैं। सारथि इनसे अश्वचालन-विद्या सीख कर अपने को परम प्रतिष्ठित मानता

हैं। पाककर्ता उनसे रसोई बनाना सीख कर अपना महत्त्व प्रकट करता है। वे सर्वगुणभूषित व्यक्ति कौन हैं? क्या वे इतिहासोक्त प्राचीन काल के कोई महात्मा हैं या आधुनिक कोई दर्शनीय पुरुष हैं? जो कोई हों वे मेरे वन्दनीय हैं।—इस प्रकार नल को न देख कर, केवल लोगों के मुँह से उनकी प्रशंसा सुन कर दमयन्ती को उन पर स्वाभाविक भक्ति उत्पन्न हुई।

एक दिन महल के भीतर एक तपस्विनी आईं। वे बाल-ब्रह्मचारिणी थीं। वेदवेदाङ्ग का तत्त्व जाननेवाली और तपश्चर्या के प्रभाव से अग्निशिखा के सदृश तेजस्विनी थीं। वे तीर्थपर्यटन कर रही थीं। राजा भीम और उनकी रानी के धर्माचरण की प्रशंसा सुनकर वे उनको दर्शन देकर कृतार्थ करने आई थीं। उनके आने की ख़बर पाकर अनेक पुरवासिनी और राजा के महल की स्त्रियाँ देवालय में उनसे मिलने गईं। तपस्विनी उन सबों से अपने तीर्थ-भ्रमण का वृत्तान्त कहने लगीं। उत्तरीय हिमालय के बर्फ़ से ढँके हुए शिखर पर उन्होंने किस तरह गौरी-शङ्कर की आराधना की थी, (जो स्थान अब भी उनके नामानुसार गौरीशृङ्ग के नाम से विख्यात है) दक्षिण-समुद्र के किनारे जहाँ भगवती की कुमारी मूर्ति स्थापित है, जहाँ महासमुद्र फेनरूपी श्वेत पुष्पाञ्जलि से दिन-रात देवी की पूजा करते हैं, वहाँ का वृत्तान्त और उत्तर-हिमालय से दक्षिण-कुमारी अन्तरीप तक भारतवर्ष के कितने ही तीर्थों की कथा उन्होंने कही। पुरवासिनी स्त्रियों ने जी लगा कर बड़े आश्चर्य भाव से उन सब तीर्थों का माहात्म्य सुना। पश्चात् विनयपूर्वक तपस्विनीजी को प्रणाम करके सब अपने अपने घर गईं। केवल रानी, दमयन्ती और उनकी दो एक दासियाँ वहाँ रहीं। तपस्विनी ने दमयन्ती की ओर लक्ष्य करके

रानी से कहा—यह जो सकल सुलक्षणों से युक्त कुमारी तुम्हारे पास बैठी है, यह तुम्हारी कौन होती है ?

रानी—यह मेरी बेटी है। दमन मुनि के आशीर्वाद से मैंने यह कन्या पाई है, इसी से इसका नाम दमयन्ती रखा है।

माता का इशारा पाकर दमयन्ती ने तपस्विनी के पैर छूकर प्रणाम किया। तपस्विनी ने उसे आशीर्वाद देकर रानी से कहा—तुम भाग्यवती हो, जिसने ऐसा कन्यारत्न प्रसव किया है। इस आदर्श कन्या के गुण से तुम्हारा वंश चिरस्मरणीय होगा। देखती हूँ, लड़की ब्याहने योग्य हो गई। क्या कहीं इसके ब्याह की बात स्थिर नहीं हुई है ?

रानी—नहीं, अभी तो स्थिर नहीं हुई है। यही एक लड़की है। कहाँ, किसके हाथ इसे दूँ, इस चिन्ता से हम और महाराज दोनों बराबर उद्विग्न रहते हैं।

तपस्विनी—मैं तुम्हारी कन्या के योग्य एक सर्वगुणी वर बता सकती हूँ। मैंने कितने ही देश देखे हैं। कितने ही राजा और राजकुमारों से मेरी जान-पहचान है। किन्तु कुल, शील, धन, विद्या और बल में इस कन्या के योग्य वही एक राजकुमार मेरी दृष्टि में सर्वोत्तम जँचता है।

रानी उत्सुक होकर बोली—वे कौन ?

तपस्विनी—वीरसेन के पुत्र निषधदेश के राजा नल।

रानी—हम सब भी बहुत दिन से उनका नाम सुनती हैं, किन्तु वे कदाचित् इस सम्बन्ध को स्वीकार न करें, इस भय से महाराज उनके पास दूत नहीं भेजते।

तपस्विनी—बेटी! जो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करेंगे, उनकी बात ही जुदी है, किन्तु जो गृहस्थधर्म का पालन करना चाहते हैं

वे तुम्हारी इस कन्या को कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते। तुम्हारी यह कन्या केवल रूपवती ही नहीं है, इसके मुँह पर जो अलौकिक भाव है, वह मैं ध्यान के समय केवल भगवती ही के स्वरूप में देखती हूँ, अन्यत्र कहीं आज तक देखने में नहीं आया।

रानी—यह मेरी लड़की है। इसकी प्रशंसा मुझको नहीं करनी चाहिए। पर आपका कहना सत्य है। ऐसी सुशीला, भक्तिमती, सुबुद्धि और गुणवती बालिका मैंने भी नहीं देखी।

तपस्विनी—मैं तुम्हारे यहाँ से विदा होकर निषध राजधानी को जाऊँगी, यह पहले ही से मेरी इच्छा थी। राजा नल से मेरी जान-पहचान है। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं वहाँ तुम्हारी कन्या के ब्याह की बात प्रसंगवश चलाऊँ।

रानी—आप जो उचित समझेंगी, उसमें क्या मेरी असम्मति हो सकती है? यदि आपकी कृपा से मेरी दमयन्ती सुपात्र के हाथ पड़े तो हम सब कृतार्थ होंगी।

तपस्विनी—तो अब शीघ्र ही यहाँ से विदा हूँगी। कल सवेरे मैं निषधदेश की यात्रा करूँगी।

रानी और दमयन्ती तपस्विनी को प्रणाम करके अपने महल को आईं।

उसी दिन से दमयन्ती के हृदय में कुछ और ही भाव का उदय हुआ। जो दमयन्ती नल की भक्ति की पात्री थी, वह अब उनके अनुराग की पात्री हुई। जो इतने दिन नल की भक्तिमात्र से तृप्त होती थी वह अब उनके दर्शन के लिए उत्सुक होने लगी। पहले जो उसके मन में यह भ्रम था कि नल इतिहास-प्रसिद्ध पूर्वकाल के कोई राजा होंगे, वह मिट गया। सत्यवादिनी तपस्विनी ने जो कहा है वह कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। उसने मन में

निश्चय किया कि वही (नल) उसके पति होने योग्य हैं। माता-पिता को भी उसे नल के हाथ सौंपने में कोई आपत्ति न थी, इस लिए ऐसी अवस्था में नई उम्र के धर्म से जो भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है, नल के ऊपर दमयन्ती का भी वही भाव उत्पन्न हुआ। नल को देखने और उनके सम्बन्ध की बात बार बार सुनने की वह बड़ी अभिलाषिणी हुई। क्रमशः नल की चिन्ता ने सम्पूर्ण रूप से उसके हृदय पर अधिकार कर लिया। दूसरी बात की चर्चा उसे न सुहाती थी; वह दिन-रात नल की भावना में पड़ी रहती थी। वह यही सोचा करती थी, हाय! मनुष्य मनुष्य को बिना देखे क्या उस पर इतना अनुराग कर सकता है? मैं जिन पर अपने को समर्पण कर चुकी हूँ, क्या वे एक बार भी मेरा स्मरण करते होंगे? स्मरण की कौन बात उन्होंने मेरा नाम तक भी न सुना होगा। हाय! यह मैंने क्या किया! एक अपरिचित व्यक्ति को क्यों अपना चित्त दे दिया?

कवियों का कथन है कि वियोगावस्था में प्रेमिक प्रेमास्पद का ध्यान कर तन्मय हो जाता है, यथा—

"संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
मिलने सैव यदेका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥"

दमयन्ती प्रत्येक पदार्थ में नल की काल्पनिक मूर्ति देखती थी। कोई कुछ बोलता था तो उसमें वह नल ही की बात सुनती थी। चित्त की इसी अवस्था में उसने एक दिन अन्तःपुर की उपवाटिका में एक विचित्र वर्ण के हंस को पकड़ा। वह प्राण-भय से अपनी जाति-भाषा में कुछ बोला। दमयन्ती ने समझा, वह नल की कोई बात कह रहा है। इससे दयार्द्र होकर उसने उसे छोड़ दिया। वह मधुर शब्द बोलता हुआ उत्तर तरफ़ उड़ चला।

दमयन्ती ने समझा, "हंस उसका संवाद देने के लिए निषध देश को जा रहा है।"

इधर तपस्विनीजी के मुँह से दमयन्ती के रूप-गुण की प्रशंसा सुन कर नल भी तद्गतप्राण हो रहे थे। स्वभावतः संयतचित्त होने पर भी कार्य करते समय उनका अन्तर्गत भाव प्रकट हो जाता था। बूढ़े राजमन्त्री ने देखा, राजा पहले की अपेक्षा अन्य-मनस्क रहते हैं, उनका चित्त चञ्चल रहा करता है। किसी कठिन प्रश्न के विचार में उनका जी नहीं लगता। रात में उन्हें नींद नहीं आती। इसलिए किसी किसी दिन होम का समय टल जाता है। वे कभी कोठे की छत पर अकेले बैठ कर चन्द्रमा की ओर टकटकी बाँध कर देखते हैं, कभी विना कारण के लम्बी साँस लेते हैं। उनके प्रसन्न मुख पर सदा उदासी छाई रहती है। वे दिन दिन दुर्बल होते जाते हैं। उनके ललाट पर चिन्ता का चिह्न और आँखें आँसू से भरी हुई दिखाई देती हैं। मन्त्री ने अनुमान किया, ये सब अनुराग के लक्षण हैं। किन्तु जितेन्द्रिय महाराज नल के लिए परस्त्री-चिन्ता तो कभी संभव नहीं, तब महाराज जिस पर अनु-रक्त हुए हैं वह भाग्यवती कुमारी कौन है? वे कुछ निश्चय न कर सके और नल को दिन दिन राज-कार्य में उदास देख कर बहुत व्यग्र हुए।

तपस्विनी ने नल के विषय में जो बातें कही थीं, राजा भीम ने रानी के मुँह से सब सुनीं। किन्तु नल को उपयुक्त पात्र जान-कर भी वे उनके पास कन्या के विवाह का प्रस्ताव न कर सके। उन्होंने रानी से कहा—प्रिये! याचक रूप से कन्यादान के लिए प्रार्थी होना हमारे कुल की रीति नहीं है। हमारे वंश की लड़की के साथ ब्याह करने की प्रस्तावना आप ही राजा महाराजा करेंगे, उनमें जिसे मैं योग्य समझूँगा, उसे लड़की दूँगा। यही

हमारे वंश का नियम है। इसलिए मैं किसी के पास इस कार्य के लिए दूत नहीं भेज सकूँगा, न किसी से मैं प्रार्थना ही करूँगा। हाँ, एक काम मैं करूँगा। मैं दमयन्ती के स्वयंवर की घोषणा करके भारतवर्ष के प्रधान प्रधान राजाओं को उस स्वयंवर में बुला भेजूँगा। यदि नल दमयन्ती के साथ ब्याह करना चाहेंगे तो वे अवश्य ही यहाँ आवेंगे। यदि स्वयंवर की बात जान कर भी वे यहाँ न आवें तो उनसे इस कार्य की आशा रखना वृथा है। स्वयंवर में आये हुए राजाओं में दमयन्ती जिसे पसन्द करेगी, जिसके कण्ठ में वरमाला डालेगी हम उसी के साथ उसका ब्याह कर देंगे।

रानी ने राजा के इस विचार को पसन्द किया। भीम ने सभासदों और मन्त्रियों को बुलाकर स्वयंवर-रचना की आज्ञा दी। बात की बात में राजकुमारी के स्वयंवर की बात सारे नगर में फैल गई। नगरनिवासियों के आनन्द की सीमा न रही। घर घर में मङ्गलाचार होने लगा। स्वयंवर का सुयोग संयोग से संघटित होता है। इसलिए सर्वसाधारण लोग बड़े उत्सुक हो स्वयंवर देखने की प्रतीक्षा करने लगे। क्रमशः स्वयंवर में आये हुए देश देश के नरेश और उनके अनुचरवर्ग से सारा कुण्डिन-पुर भर गया। नगर के चारों ओर मैदान में हज़ारों खेमे खड़े हुए। घोड़ों की हिन-हिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, और सेना-गणों के कोलाहल से आकाशमण्डल प्रतिध्वनित होने लगा। घर घर में उत्सव का चिह्न दिखाई देने लगा। तोरण बन्दनवार से सड़कें सजाई गईं। दूकानदारों ने बाज़ार को अनेक प्रकार की माङ्गलिक वस्तुएँ और दीपमालाओं से विभूषित किया। सारी नगरी इस महोत्सव से एक अपूर्व शोभा की खान सी बन गई।

आज स्वयंवर का दिन है। राजभवन के सामने की सड़क पर लोगों की बड़ी भीड़ है। जिधर देखिए उधर ही झुंड के झुण्ड लोग दिखाई देते हैं। स्वयंवर देखने के लिए नगरनिवासी आबालवृद्ध सभी उथल पड़े हैं। निमन्त्रित राजा, राजकुमार, कोई हाथी कोई घोड़े और कोई रथ पर चढ़कर बड़ी सजधज से राजभवन की ओर स्वयंवर के सभामण्डप को सुशोभित करने के लिए आ रहे हैं। उन लोगों की सवारी और भूषण-वसन आदि नगरनिवासियों के आलोच्य विषय हो रहे हैं। किसका हाथी सबसे ऊँचा है, किसका घोड़ा सब घोड़ों में तेज़ और सुन्दर है, किसकी पगड़ी और दुपट्टे कैसे मूल्यवान् हैं, इन बातों को लेकर पुरवासीगण आपस में वादानुवाद कर रहे हैं। कोठे की छत और झरोखे पर खड़ी होकर पुरवधुएँ फूलों की वर्षा कर रही हैं। साथ ही इसके दो एक नवयुवतियाँ टूटे दाँत और पके केशवाले राजा को विवाहार्थी देख कर उनकी हँसी उड़ा रही हैं। पहरेदार जहाँ तहाँ खड़े हो हाथ में बेंत लेकर बड़े कष्ट से शान्ति-रक्षा कर रहे हैं। प्रासाद के सम्मुख समतल भूमि में स्वयंवर का सभामण्डप बना है। सोने से मढ़े हुए विशाल खम्भों पर बहुत बड़ा सुन्दर शामियाना खड़ा है। खम्भे, भाँति भाँति के फूल-पत्तों और मालाओं से सुशोभित हैं। स्वयंवर का स्थान सुवासित जल से सींचा हुआ है। बीच में मार्ग है। मार्ग के दोनों ओर बहुमूल्य कुरसियों की कतारें लगी हैं। निमन्त्रित राजगण अपनी चटकीली पोशाकों से दर्शकों की आँखों में चका-चौंध पैदा करते हुए उन कुरसियों पर बैठे हैं। इत्र और गुलाब के सुगन्ध से सभागृह आमोदित हो रहा है। सुन्दर पोशाक पहने नववयस्क नौकर मोरछल और चँवर लेकर अपने अपने

राजा के पास खड़े हैं और धीरे धीरे झल रहे हैं। राजद्वार के सामने नौबतख़ाने में भाँति भाँति के मङ्गलवाद्य बज रहे हैं। कब राजकुमारी सभा में आवेगी, सब लोग सिर उठाकर उसी की राह देख रहे हैं।

इधर महल के भीतर दमयन्ती स्वयंवर योग्य वेश-विन्यास कर माता को प्रणाम करके सभा में ले चलनेवाली दासी के आने का इन्तज़ार कर रही थी। इतने में एकाएक उसके घर का द्वार खुला और एक परम सुन्दर युवा पुरुष दूसरों की आँख बचा कर वहाँ आ पहुँचा। उसके रूप-लावण्य से सारा घर प्रकाशमान हो गया। उसे देख कर दमयन्ती को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने मन में सोचा, मनुष्यजाति में ऐसा रूप सम्भव नहीं। ये ज़रूर कोई देव-कुमार होंगे। यह सोच कर उसने आगन्तुक को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। आगन्तुक दमयन्ती के रूप-लावण्य से विमुग्ध होकर निर्निमेष नेत्र से उसको देखने लगा।

दमयन्ती बोली—आप कौन हैं? कन्या के अन्तःपुर में अपरिचित पुरुष का आना मना है। क्या आप यह नहीं जानते?

आगन्तुक—मैं देवताओं की प्रेरणा से आपके पास आया हूँ। देवता का आदेश ले जानेवाले को कहीं जाना मना नहीं है। मैं जो कुछ कहने के लिए आया हूँ वह कह कर तुरन्त यहाँ से लौट जाऊँगा।

दमयन्ती—यदि देवताओं की मेरे प्रति कुछ आज्ञा हो तो कृपा कर कहिए।

आगन्तुक—देवराज इन्द्र, अग्नि, धर्मराज और वरुण आपके अनुपम सौन्दर्य्य की बात सुन कर स्वयंवर के सभामण्डप में उपस्थित हुए हैं। उन्होंने आपसे यह कहने के लिए मुझको

भेजा है कि उनमें से आप किसी एक को पति बनावें। कोई मानवी जिस सुख और जिस सौभाग्य की कभी अधिकारिणी नहीं हुई, वह आपको अनायास प्राप्त होता है।

दमयन्ती--देवदूत! देवगण मेरे पूज्य हैं। मैं उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हूँ। साधारण मनुष्य की तरह कन्या की इच्छा करके वे अपने देवत्व को क्यों कलङ्कित करना चाहते हैं?

आगन्तुक--देवगण सदा से जातिधर्म की ओर दृष्टि न देकर गुण के पक्षपाती हैं। इसी से देवराज ने दैत्य की बेटी शची से और अग्निदेव ने माहिष्मतीपुरी के राजा की बेटी स्वाहा से ब्याह किया। आप चाहें तो शची और स्वाहा की भाँति देवी का पद ग्रहण कर सकती हैं। कठिन तपस्या से भी जो स्वर्गसुख दुर्लभ है, उसका आप त्याग न करें। जब स्वयं देवगण प्रार्थी होकर आये हैं, तब उनका अनादर करना उचित नहीं।

दमयन्ती--क्षमा कीजिए, बहुत बात बढ़ाने की ज़रूरत नहीं। आप देवताओं से मेरा प्रणाम निवेदन करके कहिए, मैं पहले ही एक व्यक्ति को पतिरूप से वरण कर चुकी हूँ। उनके लाभ की आशा ही से मैं अभी स्वयंवर में जाना चाहती हूँ। देवता, दानव या गन्धर्व जो हों, अब किसी दूसरे को स्वीकार करने से मेरा सतीत्व जाता रहेगा। देवगण धर्म के रक्षक हैं, जिसमें मैं अपने संकल्पित पति को पा सकूँ वे ऐसा ही आशीर्वाद करें।

आगन्तुक का मुँह राहुग्रस्त चन्द्रमा की भाँति मलिन हो गया। उन्होंने पूछा--आपने जिनको मन से वरण किया है, वे कौन हैं, क्या उनका नाम मैं जान सकता हूँ?

दमयन्ती--आप देवदूत हैं। देवगण अन्तर्यामी होते हैं। इसलिए आपसे अपने मन की बात कहने में क्षति क्या? मैं

निषध देश के महाराजा नल को मन ही मन पतिभाव से स्वीकार कर चुकी हूँ।

आगन्तुक का चेहरा प्रातःकालिक कमल सा खिल गया। उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—अच्छा, मैं अब जाता हूँ। आपका अभिप्राय देवताओं से कहूँगा। मैं ही नल हूँ। देवताओं के अनुरोध से मैंने उनका दूतत्व स्वीकार किया था और उनका संवाद आपसे कहने आया था।

इतना कह कर वे वहाँ से अन्तर्हित हुए। उनके अदृश्य होते ही मानो घर में अन्धकार छा गया। दमयन्ती आश्चर्यान्वित होकर सोचने लगी—"यह स्वप्न है या देवमाया? यदि सचमुच ये नल ही हों तो इन्हें वरण कर मैं अपने जीवन को सफल समझूँगी।" इसी समय उसकी सखी ने आकर कहा—राजकुमारी! आपको स्वयंवर में ले चलने के लिए आपकी दासी बाहर खड़ी है, चलिए।

दमयन्ती इष्टदेव को प्रणाम करके स्वयंवर-सभा की ओर चली। शंखध्वनि से सारा महल गूंज उठा। स्त्रियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं। भाँति भाँति के बाजे बजने लगे। बन्दी जन उच्च स्वर से स्तुतिपाठ करने लगे। मागध और सूतगण विदर्भराज का यश वर्णन करने लगे। शुभ घड़ी में दमयन्ती स्वयंवर-सभा में आई। भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजा और राजकुमार सभा-मण्डप में बैठे थे। स्वयंवर-सभा के चारों ओर दर्शकों की अपार भीड़ थी। सभी की दृष्टि एक दमयन्ती ही की ओर थी। दमयन्ती का हृदय काँपने लगा। उसके दोनों पैर शिथिल से जान पड़ने लगे। वह इष्टदेवता का स्मरण करके धीरे धीरे आगे बढ़ने लगी। सभामण्डप में प्रवेश के साथ उस पर हज़ारों नेत्र एक साथ

पतित हुए। सभी लोग टकटकी बाँध कर उसकी अपूर्व शोभा देखने लगे। राजाओं ने देखा, आगे पीछे अस्त्रधारी वीरगण हैं, उनके बीच में माङ्गलिक वस्तुओं को हाथ में लिये मण्डलाकार दासियाँ हैं। उनके मध्य में भूषण वसन से सुसज्जित दमयन्ती ऐसी शोभा पा रही है, जैसी ताराओं के बीच में चन्द्रमा शोभा पाता है। दमयन्ती लाल रङ्ग की रेशमी साड़ी पहने है, ललाट में चन्दन का तिलक है। सम्पूर्ण शरीर रत्न-जटित सोने के आभूषणों से विभूषित है। केश-पाश में फूल गूँधे हैं। हाथ में फूलों की माला है। उससे अङ्ग की ज्योति से उसके रत्न-भूषण मलिन हो रहे थे :

मानो तिय तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवे काज ।
दृग पग पोंछन को कियो, भूषण पायन्दाज ॥

दमयन्ती को देखकर राजाओं ने मन में सोचा, इतने दिन बाद विधाता के हाथ का एक अपूर्व कौशल देखा। खूबसूरती का नमूना अलग अलग है। परन्तु असली खूबसूरती वही है जो पग पग में अङ्ग की अपूर्व शोभा से दृष्टि को अटका रक्खे। राजाओं ने दमयन्ती का वही रूप देखा। सब यही सोचने लगे कि न जाने कौन भाग्यवान् पुरुष इस अनुपम कन्या-रत्न को पाकर कृतार्थ होंगे।

जिस जगह से समस्त सभामण्डप देख पड़ता था, जब दमयन्ती वहाँ आ खड़ी हुई तब राजपुरोहित ने दमयन्ती के पास आकर आशीर्वादपूर्वक उससे कहा—तुम्हारे पिता के बुलाने से भारत के प्रधान प्रधान राजा इस स्वयंवर-सभा में आये हैं। यह देखो, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मिथिला, कोशल, मगध, काशी, गान्धार, अवन्ती, पाञ्चाल, मद्र, कामरूप और सुराष्ट्र आदि

देश के नरेश तुम्हारे अनुपम रूपगुण की बात सुन कर तुम्हारे पाणिग्रहण के प्रार्थी होकर यहाँ उपस्थित हुए हैं। तुम्हारे पिता की इच्छा है कि इन आगत राजाओं में जिन्हें तुम योग्यतम जानो उनके गले में वरमाला पहनाओ। शिक्षा, संयम और व्रताचरण के गुण से तुम हिताहित के ज्ञान में कुशला हो, इसीलिए तुम्हारे पिता ने तुम्हारे ही ऊपर यह भार दिया है। प्रवीण राजभाट तुमको सभास्थ प्रत्येक राजा का परिचय देंगे। सुनकर और पूर्वापर विचार कर तुम अपने योग्य पति को वरण करो।

राजपुरोहित यह कहकर चुप हो रहे। साथ ही जनकोलाहल और बाजे बन्द हुए। दमयन्ती धात्री के साथ पहले प्राग्ज्योतिषपुर के राजा के पास गई। राजभाट उनके पास आ खड़ा हुआ। वह बूढ़ा था, उसके सिर के बाल सफ़ेद थे। चमड़ा सिकुड़ा हुआ था। वह पीत वस्त्र पहने था। गुलाबी रङ्ग की चादर कन्धे पर डाले था। उसके ललाट में त्रिपुण्ड्र चन्दन शोभित था। सिर पर खूब बड़ी पगड़ी शोभा दे रही थी। हाथ में एक सोने की छड़ी थी। प्रत्येक राजा की वंशावली और सुयश उसे मालूम था। उसने प्राग्ज्योतिषपति को लक्ष्य करके दमयन्ती से कहा—राजकुमारी! आपके सामने जो ये इन्द्रतुल्य पुरुष विराजमान हैं, इनका नाम सोमदत्त है। ये प्राग्ज्योतिषपुर के राजा हैं। इनके बाहुबल से पराजित होकर दुर्दम्य किरातों ने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली। इनके दन्तार हाथी ऐरावत के समान बलवान् हैं। अगर आप इन्हें स्वीकार करेंगी तो नगर के प्रवेश-काल में किरातों की स्त्रियाँ नाच गाकर आपकी अभ्यर्थना करेंगी और आपको प्रसन्न करेंगी। जब आप इनके पर्वत की

चोटी पर बने हुए प्रासाद के ऊपर खड़ी होंगी तब आप ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्राणी की तरह शोभा पावेंगी ।

यह सुन कर दमयन्ती ने एक बार उत्सुकनयन से प्राग्ज्योतिषपति को देखा और उनको नमस्कार करके आगे बढ़ने के लिए दासी को इशारा किया ।

दासी वहाँ से मिथिलाधीश के पास ले गई । राजभाट कहने लगा—राजकुमारी ! भूपमण्डली में जो आकृति और स्वभाव में ब्राह्मण के सदृश ज्ञात पड़ते हैं, मिथिला के महाराज तृणध्वज हैं, जो आपके करग्रहण की अभिलाषा से यहाँ आये हैं । इनका दरबार श्रोत्रिय ब्राह्मणों से बराबर भरा ही रहता है, और इनके अग्निहोत्र का घर कभी होम के धुवें से ख़ाली नहीं रहता । बुढ़ापा आ जाने पर भी ये कठिन से कठिन व्रत करने में कभी आलस्य नहीं करते । सस्त्रीक होकर धर्माचरण करने का विशेष फल है, यह सोच कर सन्तान रहते भी ये फिर विवाह करना चाहते हैं । प्रति दिन सामगान सुन कर यदि आपको सवेरे शय्या त्याग करने की इच्छा हो तो आप इनको वरें । अगस्त्य मुनि के वाम भाग में लोपामुद्रा की भाँति आप भी यज्ञस्थल में इनके पास बैठ कर शोभा पावेंगी ।

दमयन्ती ने मिथिलाधीश के दर्शन कर हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके दासी से अन्यत्र चलने का संकेत किया ।

दासी दमयन्ती को लेकर मगध के राजा ऋतिमान के पास गई । अन्यान्य राजा उत्सुक चित्त से उसे देखने लगे । भाट ने दमयन्ती से कहा—पर्वतों में जैसा विन्ध्य, वृक्षों में जैसा साखू वैसे ही राजाओं में ये मगध के महीप ऋतिमान हैं । इनका दुर्धर्ष बल-पराक्रम, इनके स्वरूप से ही प्रकट हो रहा है । वृषभ के कन्धे

की भाँति इनका मोटा कन्धा, किवाड़ के तख़्ते सी चौड़ी छाती, और हाथी की सूँड़ सी इनकी मोटी बाहें कैसी शोभा दे रही हैं। इनसे बाहुयुद्ध में हार कर कितने ही बड़े बड़े नामी पहलवान इनके चेले बने हैं। इनकी राजधानी पहाड़ों के बीच में सुशोभित है। पहाड़ ही इनके क़िले का काम दे रहे हैं। अनेक बार शत्रुओं से आक्रान्त होने पर भी कभी इनकी राजधानी दूसरे के हाथ में न गई। यदि आपको वीरपत्नी कहलाने की एकान्तवासना हो तो आप इनको पतिरूप में ग्रहण करें।

दमयन्ती ने सिर नवा कर ऋतिमान को नमस्कार किया। दासी राजकुमारी के मन का आशय समझ कर उसे कोशलाधीश मीनकेतु के पास ले गई। दमयन्ती ने सुन्दर वेशधारी मीनकेतु को एक बार पलक उठा कर देखा।

भाट ने कहा—राजकुमारी! जिस कोशल देश की दक्षिण सीमा में पवित्रसलिला गङ्गा की धार है और जिनकी राजधानी के पास सरयू नदी प्रवाहित है, उसी कोशल देश के राजा ये मीनकेतु हैं। इनकी राजसभा नर्तकीगणों के नाच गान से सदा उल्लसित होती रहती है। जाड़े के समय में रहने के लिए इन्होंने सरयू के किनारे और ग्रीष्मवास के लिए गङ्गा-तट पर जो विशाल भवन बनवाया है, संसार में उनके जोड़ का महल देखने में नहीं आता। पत्नियों के साथ ये कभी सरयूतीर के उपवन में विहार करते हैं। कभी गङ्गा में जलक्रीड़ा करते हैं। दासीगण तुरन्त के खिले हुए फूलों से इनकी शय्या सँवारती हैं। इनके राजभवन से निकले हुए कस्तूरी के सुगन्धि से सारा नगर सर्वदा आमोदित होता रहता है। इनकी उपवाटिका जो सरयू-किनारे सुशोभित है, वह अपनी शोभा से इन्द्र के नन्दन कानन

को भी पराजित कर रही हैं। यदि आप इन्हें पतिभाव से स्वीकार करें तो इन्द्राणी भी जिस उद्यान में विहार करने की लालसा रखती हैं आप उसकी अधीश्वरी होंगी।

इसी समय दूर से नल को देख कर दमयन्ती कोशलेश को नमस्कार करके उनके पास जाने को उद्यत हुई।

यह देख कर दासी ने कहा—राजकुमारी! आपकी बांई ओर एक और राजकुमार हैं, उनको अतिक्रम कर आगे जाना उचित नहीं, इससे वे अपना अपमान समझेंगे।—यह सुन कर दमयन्ती लजा गई और दासी के साथ उस राजकुमार के पास जा खड़ी हुई।

भाट ने कहा—राजनन्दिनी! आपके सामने जो ये सुराष्ट्र देश के राजकुमार रुक्मरथ विद्यमान हैं, इनका रथ रुक्म अर्थात् सोने का बना है, इसी से इन्होंने यह दुर्लभ उपाधि पाई है। इनका राज्य समुद्र तक फैला हुआ है। इसलिए क्या जल, क्या थल, जहाँ जो दुर्लभ रत्न उत्पन्न होता है, वह सब इन्हीं के पास आता है। आप इनकी ओर एक बार आँख उठा कर देखें तो मालूम होगा, इनकी पगड़ी का हीरा शुक्र-ग्रह की भाँति कैसा चमचमा रहा है। इनके कण्ठ में हरित मणि की माला वसन्तकाल की लता की तरह अपूर्व शोभा दे रही है। इनकी बाँह में पद्मराग-जटित केयूर, हाथों में नीलमणिजटित सोने के कड़े और कानों में मोती से मण्डित कुण्डलों की शोभा देखते ही बन आती है। यदि आप इनको वरण करें तो ये अपने भाण्डार का सर्वोत्तम रत्नसमूह आपको देंगे। जब आप उन रत्नों को धारण करेंगी, तब मानव-जाति की रानियों की बात दूर रही कुवेर की स्त्री भी आपकी समता नहीं करेंगी।

भाट की बात सुनकर दमयन्ती के होठों पर कुछ हँसी आ गई। उसने दासी से कहा—"चलो, सभामण्डप के उत्तर ओर चलें!" दासी "जो आपकी इच्छा" कह कर उसके पीछे पीछे चली।

इस बार दमयन्ती नल के सामने आई। वहाँ आते ही उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उसकी इच्छा हुई कि एक बार नल को अच्छी तरह देख लें, किन्तु लज्जा ने ऐसा करने न दिया। तो भी वह कनखियों से देख कर समझ गई कि कुछ देर पहले जो देवदूत बन कर उसके अन्तःपुर में गये थे, ये वही हैं। किन्तु अभी स्वयंवर के योग्य पोशाक में वे और भी सुन्दर दिखाई देते थे। चतुर भाट दमयन्ती के मुँह का भाव देख कर बोला—ये जो अत्यन्त सुन्दर चक्रवर्ती के लक्षण से युक्त कमनीय पुरुष आपके सामने बैठे हैं, यही विख्यातकीर्ति निषध देश के महाराज नल हैं। ब्रह्मा ने सब गुणों को एकत्र दिखलाने ही के लिए इनको सिरजा है। संसार में विशेष से साधारण तक ऐसा कोई काम नहीं जिसमें ये कुशल न हों। वेद-वेदाङ्ग शास्त्रों पर इनका पूर्ण अधिकार है। रथ चलाने और रसोई बनाने में भी ये बड़े दक्ष हैं। इनका रूप, युवापन, कामिनीजनों के मनोहर होने पर भी ये जितेन्द्रिय हैं, दण्ड देने का सामर्थ्य रखते हुए भी ये क्षमाशील हैं। ये अपने बाहुबल और अपने पवित्र आचरण इन दोनों गुणों से शत्रुओं को जीते हुए हैं। अपने प्राण का कुछ मोह न करके ये विपद्ग्रस्त शरणागतों की रक्षा करते हैं। सत्य के अनुरोध से ये अपना अप्रीतिकर कार्य करने में भी विमुख नहीं होते। कर्तव्य के पालन में ये अपने हानि-लाभ का विचार न करके जो उचित समझते वह अवश्य करते

हैं। रूप, गुण और शील में ये सर्वदा आपके उपयुक्त हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो इन्हें पति बनावें।

दमयन्ती ने भाट की बात सुन कर प्रसन्न दृष्टि से नल को देखा। उनके गले में वरमाला डालने के लिए उसका हाथ किञ्चित् ऊपर को उठा। किन्तु वह एकाएक ठिठक गई। उसका मुँह सूख गया। उसकी छाती धड़कने लगी। दोनों पैर काँपने लगे। सिर में पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। वह कुछ देर निश्चल भाव से खड़ी रही। दासी ने इसका कारण न जान कर पूछा—"राजकुमारी! आपका मुँह ऐसा उदास क्यों देखती हूँ?" दमयन्ती ने कुछ उत्तर न देकर केवल नल की निकटवर्ती कुरसियों की ओर उँगली उठाई। दासी को कुछ दिखाई न दिया। किन्तु दमयन्ती देख रही थी, जिस मञ्च पर नल बैठे थे उसके पासही उनके समान और भी चार व्यक्ति बैठे थे। रूप, उम्र, और पोशाक आदि में उन पाँचों में कुछ फ़र्क़ नहीं था। उनमें कौन सच्चा नल है, किसके गले में वह वरमाला पहनावे, इस चिन्ता से यह व्याकुल हो रही थी। एकाएक उसे यह बात याद हो आई कि दूत ने कहा था, देवगण मुझसे ब्याह करने की इच्छा से स्वयंवर में आये हैं, तो क्या मेरी परीक्षा करने के लिए यह उन्हीं की माया तो नहीं है? दमयन्ती दुखी होकर मन ही मन कहने लगी, "देवगण! आप धर्म के रक्षक हैं। स्त्रियों के लिए सतीत्व-धर्म से बढ़ कर कोई धर्म नहीं। जिससे मेरा सती-धर्म बना रहे, वह आप करें।" पलक मारने के साथ दमयन्ती ने देखा, उन पाँचों में चार की सूरत शकल पाँचवें से कुछ विलक्षण है। उन चारों की पलकें नहीं लगतीं, उनके सिर में पसीना नहीं है, और कुरसी पर बैठे रहने पर भी धरती

से उन चारों के पैर कुछ ऊपर उठे हैं। देखते ही वह समझ गई कि ये चारों देवता हैं। पाँचवाँ एक सच्चा नल है।

इस प्रकार सच्चे नल का पता लगा कर दमयन्ती ने प्रफुल्ल मन से उनके गले में वरमाला डाल दी और दासी के हाथ से चन्दन लेकर उनके मस्तक में लगा दिया तथा अर्घ्य से उनके पैर धोकर उन्हें प्रणाम किया। साथ ही सखीगण मङ्गल गीत गाने लगीं। पुरोहित की शंखध्वनि से सभामण्डप गूँज उठा। भाँति भाँति के मङ्गलवाद्य बजने लगे। वन्दीगण खूब उच्च स्वर से "जय गणेश मङ्गलकरण" आदि आशीर्वादसूचक देवस्तुति पढ़ने लगे। थोड़ी ही देर में यह शुभ समाचार सारे नगर में फैल गया। सुनकर सभी लोग प्रसन्न हुए और कहने लगे, "राजकुमारी ने योग्य वर पसन्द किया।" शुभ दिन शुभ घड़ी में नल के साथ दमयन्ती का ब्याह होगया। निमन्त्रित राजगण विदर्भराज से उचित सत्कार पाकर किसी तरह मनोदुःख को दबा कर अपने अपने घर गये। इन्द्रादि देवगण भी दम्पती (नल-दमयन्ती) को आशीर्वाद देकर स्वर्ग को गये।

ब्याह हो जाने पर नल ने दमयन्ती को साथ ले निषध देश को प्रस्थान किया। थोड़े ही दिन में दमयन्ती अपने अच्छे शील-स्वभाव से प्रजावर्ग और आश्रित जनों की मातृवत् पूजनीया हुई। धार्मिक स्त्री-पुरुषों का समय जिस आनन्द के साथ व्यतीत होना चाहिए, उनका समय भी उसी तरह व्यतीत होने लगा। यज्ञ और व्रताचरण में दमयन्ती अपने पति की सङ्गिनी हुई। विवाह का जो मुख्य उद्देश है वह सफल हुआ। यथासमय उनके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम इन्द्रसेन रक्खा

गया और बेटी का इन्द्रसेना। दोनों रूप, गुण और शील-स्वभाव में माता-पिता के समान हुए।

इस संसार में निरन्तर सुख कभी किसी को न हुआ। सुख के समय किसी के धर्म की परीक्षा भी नहीं हो सकती। सोने की जाँच जैसे आग में होती है, वैसे ही धर्म की परीक्षा विपत्ति-काल में होती है। कहा है:—

"आपत्काल परखिए चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी।"

दमयन्ती के जीवनकाल में भी एक विषम परीक्षा प्रारम्भ हुई। उस परीक्षा में वह भली भाँति उत्तीर्ण हो गई। इसी से पतिव्रताओं में उसने श्रेष्ठ आसन पाया। बिना परीक्षा के निर-न्तर सुख भोग करने पर भी कौन उसका नाम जानता?

नल के एक सगा भाई था, जिसका नाम पुष्कर था। नल जैसे धार्मिक, साधुस्वभाव और जितेन्द्रिय थे पुष्कर ठीक उसके ख़िलाफ़ था। वह अत्यन्त छली, दुष्ट-स्वभाव और अधर्मी था। नल के राज्य और ऐश्वर्य पर उस दुष्ट के दाँत गड़े थे। पतिव्रता दमयन्ती के ऊपर भी उसकी बुरी निगाह थी। किन्तु बलपूर्वक नल की सम्पत्ति या दमयन्ती का अपहरण करना असम्भव देख कर उस दुरात्मा ने एक उपाय सोचा। वह जुवा खेलने में नल से विशेष पटु था। इसलिए उसने नल को जुए में हरा कर उनका सर्वस्व हरण करने का संकल्प किया। उस समय के क्षत्रिय राजाओं में यह एक रिवाज था कि युद्ध में या द्यूतक्रीड़ा में बुलाये जाने पर वे इनकार नहीं करते थे। यदि किसी ने इनकार किया तो वह कायर समझा जाता था और सर्वत्र उसकी निन्दा होती थी। हज़ारों गुण रहते भी नल को जुआ खेलने का बड़ा

शौक़ था। राजाओं के लिए नीति-शास्त्र में जो अठारह प्रकार के व्यसन लिखे हैं, उनमें जुआ खेलना मुख्य है।

पुष्कर से बुलाये जाने पर राजा नल इस व्यसन से अपने को न रोक सके। दोनों में दिन दिन जुवेबाज़ी चलने लगी। नल बारम्बार हारने लगे। वे जितना ही हारते थे उतनी ही उनकी चसक जुवे की ओर बढ़ती जाती थी। भाण्डार के मणिमोतियों से आरम्भ कर घोड़े, हाथी, बाग़, बग़ीचे और इमारतें तक बाज़ी रख कर नल जुआ खेलने और हारने लगे। क्या दिन क्या रात नल सर्वदा जुआ खेलने ही के पीछे हैरान रहते थे। दूसरा कोई काम उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने राज-कार्य करना एक-दम छोड़ दिया। राज-सम्बन्धी कार्य में उनकी अनुमति लेने के लिए बूढ़े मन्त्री व्यग्र होने लगे, पर उन्हें नल का दर्शन दुर्लभ हो गया। दमयन्ती शयनगृह में अकेली बैठ कर रात बिताती थी। नल दिन-रात में एक बार भी महल के भीतर न आते थे। नल को इस प्रकार व्यसनासक्त देख कर प्रजागण में हाहाकार मच गया। वे सब कहने लगे, महाराज को कलि ने आ घेरा है, नहीं तो उनकी बुद्धि इस तरह भ्रष्ट क्यों होती? आख़िर एक दिन प्रजा ने मन्त्री को साथ लेकर दमयन्ती के पास जाकर निवेदन किया—"माँ! राज्य हाथ से चला जा रहा है, आप महाराज से समझा कर न कहेंगी तो कुछ न बचेगा।" दमयन्ती नल का दर्शन कहाँ पाती जो उनसे कुछ कहती। एक दिन संयोग से उनसे भेट होने पर उसने आँसू भरी आँखों से सब बातें कह सुनाईं और अन्त में उनके पैरों पर गिर कर रोने लगी। किन्तु इससे कुछ फल न हुआ। नल कुछ देर उदासी के साथ दमयन्ती के मुँह की ओर देखते रहे, इसके बाद बिना कुछ कहे

द्यूतशाला में जाकर पुष्कर के साथ फिर जुआ खेलने लगे। दमयन्ती के हृदय में बड़ी चोट लगी। वह हाथ जोड़ कर पति को सुमति देने के लिए देवताओं से प्रार्थना करने लगी। वह समझ गई कि महाराज को जुवे में जैसी आसक्ति उत्पन्न हुई है उससे कुछ न बचेगा, धीरे धीरे सब पुष्कर के हाथ में जायगा। पति के साथ दुःख भोगने के लिए वह तैयार हो रही। किन्तु छोटे से बालक और बालिका दोनों दुःख न सह सकेंगे, यह सोच कर उसने उन्हें अपने पिता के घर भेज दिया।

इधर नल ने जुवेबाज़ी में अपना सर्वस्व खो दिया। राज्य, धन जो कुछ था सब हार जाने पर वे अपने भूषण, वस्त्र, धनुष-बाण तक जुवे में हार गये। पुष्कर की इच्छा थी कि नल अपने को और दमयन्ती को भी बाज़ी पर रक्खेगा, किन्तु नल ने ऐसा न किया। पुष्कर ने नल को जुवे में जीत कर कहा—मूर्ख! तुम अब यहाँ क्या करते हो? तुम्हारे पास जो कुछ था, तुम सब हार गये। अब यह राज्य मेरा हुआ, तुम यहाँ से कूच करो।

नल ने कुछ आपत्ति न की, तुरन्त राजभवन त्याग दिया, पति-प्राणा दमयन्ती पहले ही से तैयार थी, पति को जाते देख वह भी उनके पीछे पीछे चली। राजा और रानी को राजधानी छोड़ उस अवस्था में जाते देख नगरनिवासी लोग आर्तनाद करने लगे। घर घर में उदासी छा गई। किन्तु दुष्ट पुष्कर ने घोषणा कर दी थी कि जो कोई नल और दमयन्ती को किसी तरह का सहारा देगा उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। इसलिए प्रजाहितैषी नल ने किसी की सहायता स्वीकार न की। उन्होंने नगर त्याग कर घोर जङ्गल में प्रवेश किया। उनके मुकुटरहित मस्तक पर प्रचण्ड सूर्य की

किरणें पड़ रही थीं। कमल से कोमल पैरों में बहुत बचाकर चलने पर भी कुश काँटे गड़ जाते थे। तो भी दोनों धीरे धीरे आगे की ओर बढ़ने लगे। जुवे का बुरा परिणाम सोच कर नल का हृदय पश्चात्ताप से दग्ध होने लगा। वे सोचते थे—"मैं ही बेचारी दमयन्ती के इस कष्ट का कारण हूँ।" किन्तु दमयन्ती के मुँह पर विषाद का कुछ चिह्न न था। कहीं उसे उदास देख कर नल और भी लज्जित और अनुतप्त न हों, इस भय से वह अपने क्लेश को यथासाध्य छिपाने की चेष्टा करती थी। वह कभी जङ्गली पेड़ पौधे और लताओं का नाम पूछ कर कभी निषध देश यहाँ से कितनी दूर है, आदि अनेक प्रश्न करके नल के मन को भुलाने की चेष्टा करती थी। किन्तु नल को अपनी मूर्खता की बात कब भूलनेवाली थी। वे दमयन्ती से बार बार कहने लगे—प्यारी! मैं ही तुम्हारे सब कष्टों का मूल हूँ। यदि तुम मेरे ऐसे दुर्बोध को वरण न करतीं तो आज तुम्हें यह कष्ट भोगना नहीं पड़ता!

दमयन्ती ने कहा—नाथ! क्या पत्नी पति के केवल सुख की ही साथिन है? दुख की नहीं? सुख के समय आपने मुझको व्रत में और यज्ञ में सहधर्मिणी का आसन देकर अक्षय पुण्य का भाग दिया तो आज अरण्यवास के समय आप मेरे लिए इतने अधीर क्यों हो रहे हैं? आपके साथ यह वनवास मेरे लिए स्वर्गवास के तुल्य है। आपको कुछ क्लेश न हो, यही मेरे मन में भारी चिन्ता लगी रहती है। मैं अपने लिए ज़रा भी चिन्ता नहीं करती। आप प्रसन्न रहें तो मुझे क्या दुख है? आप जहाँ सुखपूर्वक रहेंगे वहीं मैं भी रह कर सुख से समय बिताऊँगी।

दमयन्ती और नल केवल एक पहरने का कपड़ा लेकर जङ्गल

में आये थे। जब विपत्ति का दिन आता है तब बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है—

"प्रायः समापन्नविपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।"

एक दिन नल सोने के रङ्ग की विचित्र चिड़िया पकड़ने के लिए जाकर अपनी धोती गवाँ आये। उन्होंने धोती फेककर चिड़ियों को फँसाना चाहा। चिड़िया धोती लेकर उड़ गई। तब दमयन्ती ने अपनी साड़ी का आधा भाग करके नल को पहरने के लिए दिया। दोनों बड़े कष्ट से आगे बढ़े। वन के तीते कड़ुवे फल मूल खाने, पेड़ के नीचे या गिरिगुफा में सोने और मार्ग चलने से दोनों के शरीर सूख गये। इस पर विषैले कीड़े और मक्खियों के काटने से उन्हें बड़ा कष्ट होता था। मारे चिन्ता के रात को उन्हें नींद न आती थी। दमयन्ती की आँख लगने पर भी नल जागते रहते थे और सोचते थे, "हाय! कितने दिन और इस तरह कटेंगे?" कब इस विपत्ति से छुटकारा पावेंगे? हा! क्या थे और क्या हो गये? कभी वे सोचते थे, "पुष्कर ने जुवे में मुझको हरा कर सर्वस्व हर लिया। यदि मैं भी उसे जुवे में हरा सकूँ। तभी मेरे मन का क्षोभ जा सकता है, अन्यथा नहीं। परन्तु वह जुवा खेलने में मुझसे निपुण है, उसको परास्त करने योग्य यह विद्या मैं कहाँ पाऊँगा।" सुना है, अयोध्या के महाराजा ऋतुपर्ण इस समय जुवा खेलने में संसार भर में अद्वितीय हैं। किन्तु वे क्या मुझे अपनी विद्या सिखा सकेंगे? जी नहीं मानता। मुझे क्षत्रिय जान कर उन्हें यह आशङ्का होगी, "यदि किसी दिन मैं उनसे जुवा खेलने का अनुरोध करूँगा, तो वे मुझको न हरा सकेंगे।" आख़िर उन्होंने निश्चय किया, "छद्मवेश से राजा ऋतुपर्ण

के पास जाऊँगा । मैं उनकी सेवा करके या अपना कोई विशेष गुण दिखा कर जैसे होगा उन्हें प्रसन्न करके उनसे द्यूतविद्या सीखूँगा। इससे पुष्कर को जुवे में हरा कर फिर राज्यलाभ करना मेरे लिए कठिन न होगा।" यह विचार नल को बड़ा ही उपयोगी जान पड़ा। किन्तु तुरन्त ही उन्होंने फिर यह बात सोची, "इस अवस्था में, इस आधे वस्त्र को पहन कर, दमयन्ती को साथ ले कैसे ऋतुपर्ण के पास जाऊँ?" उनका हृदय निराशा से अधीर हो उठा। फिर उन्होंने सोचा, "इसका भी एक उपाय है। यदि दमयन्ती कुछ समय के लिए बाप के घर जाकर रहे, तो मैं अयोध्या जाकर द्यूतविद्या सीख सकता हूँ। किन्तु दमयन्ती क्या मुझे छोड़ कर अकेली बाप के घर जाना पसन्द करेगी? कभी नहीं। तो फिर उपाय क्या?" नल में अब सोचने की शक्ति न रही। वे चिन्ता से परास्त होकर सो गये।

इस तरह दिन पर दिन बीतने लगा। एक दिन नल ने दमयन्ती से कहा—प्रिये, तुम कुछ दिन के लिए विदर्भ जाकर रहो। मैं कुछ यत्न करके देखूँगा, कदाचित् इस विपत्ति से छुटकारा पा सकूँ।

दमयन्ती—नाथ! प्राण रहते मैं आपको छोड़ कर नहीं जा सकती। मैं पिता के घर जाकर सुख से रहूँगी और आप वन वन मारे फिरेंगे, यह कभी मुझे सह्य हो सकता है?

"जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥"

चलिए, आप भी विदर्भ चलिए, मेरे पिता आपको इष्टदेव की भाँति आदर-सत्कार से रक्खेंगे।

नल—मैं जानता हूँ कि तुम्हारे माता-पिता मेरा अनादर न

करेंगे। किन्तु मैं कौन मुँह लेकर उनके पास जाऊँगा? तुम्हारे स्वयंवर में मैं चतुरङ्गिणी सेना सजा कर विदर्भ गया था, अब इस भेष से कैसे वहाँ जाऊँगा। दरिद्रावस्था में रिश्तेदार के घर जाने से मर जाना अच्छा है।

दमयन्ती चुप हो रही। नल ने समझा, "दमयन्ती अपने मन से उन्हें न छोड़ेगी। उनके मन में यह भी पूरा विश्वास हो गया कि कुछ दिन दमयन्ती से अलग होकर न रहने से उद्धार होना कठिन है। इसलिए वियोग-व्यथा कुछ दिन के लिए हम दोनों को सहनी होगी, परन्तु पतिप्राणा दमयन्ती को वे अकेली उस जङ्गल में कैसे छोड़ कर कहीं जायँगे? कौन हिंस्र आदि जङ्गली दुष्ट पशुओं से उसकी रक्षा करेगा!" फिर उनके मन में यह बात आई कि धर्म ही सती की रक्षा करता है। कितनी ही नई उम्र की ब्रह्मचारिणी अकेली तीर्थाटन करती हैं, निर्जन वन में कुटी बना कर तपस्या करती हैं, कौन उनकी रक्षा करता है? मन में कोई दृढ़ संकल्प उत्पन्न होने से उसके लिए परिपोषक युक्ति का अभाव नहीं होता। आख़िर नल ने निश्चय किया कि जब दूसरा उपाय नहीं है तब दमयन्ती को गाढ़ निद्रा में सोती छोड़ कर किसी ओर चल दूँगा। दमयन्ती जैसी बुद्धिमती और सुशीला है, उससे वह किसी न किसी तरह निर्विघ्नपूर्वक पिता के घर पहुँच जायगी। जब सुदिन आवेगा तब उसके साथ फिर भेट हो रहेगी। यदि इस विपत्ति का अन्त न होगा तो मेरे भाग्य में जो दुख बदा होगा वह मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा। दमयन्ती पिता के घर रह कर बेटे-बेटी के साथ किसी तरह समय बितावेगी ही।

यह सोच कर नल ने दमयन्ती से कहा--प्रिये! इस जङ्गल के उत्तर तरफ़ से होकर जो रास्ता पूरब ओर गया है, वह विदर्भ

जाने का मार्ग है, उस मार्ग से लोग चाहें तो आँख मूँद कर विदर्भ जा सकते हैं। बनियाँ, महाजन और तीर्थयात्री लोग बराबर इसी रास्ते से वहाँ जाते आते हैं। यदि किसी दिन तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उन यात्रियों के साथ इस रास्ते से अनायास ही पिता के घर जा सकती हो।

नल के इस प्रकार कहने का मतलब क्या है, यह दमयन्ती की समझ में आगया। उसने कहा—नाथ! आपकी बात से मेरा हृदय काँपता है। क्या आप मुझको छोड़ना चाहते हैं। दासी ने आपका क्या अपराध किया है? किस दोष से आप इस दासी को छोड़ेंगे?

नल कुछ न बोले। पर दमयन्ती मारे चिन्ता के व्याकुल हो उठी। यद्यपि वह स्वामी के साथ एक ही कपड़ा पहरे थी तथापि उसका मन नहीं मानता था। रात में वह नल को दोनों बाहों से अच्छी तरह जकड़ कर सोती थी। कुछ दिन यों ही बीते।

एक दिन दमयन्ती अधिक परिश्रान्त होने के कारण नल से पहले ही सो गई। नल उसे गाढ़ निद्रा में निमग्न देख धीरे धीरे उठ बैठे और उसका आधा कपड़ा फाड़ कर उन्होंने पहन लिया। अब वे जाने को उद्यत हुए। किन्तु दमयन्ती सी सती स्त्री को कौन ऐसा पति होगा जो बिना आँसू बहाये छोड़ सकेगा? नल पेड़ के नीचे सोई हुई दमयन्ती के पास खड़े होकर अनिमेष नयन से उसे देखने लगे। पत्तों के बीच से चन्द्रमा की चटकीली चाँदनी दमयन्ती के मुँह पर पतित हो रही थी। वनवास के दुःख से उसकी कान्ति मलिन हो गई थी तो भी नल को उसके मुँह की अपूर्व शोभा देख पड़ी। दमयन्ती फूँस पत्ते बिछा कर सोई थी, परन्तु नल को यही जानप ड़ता

था जैसे वह चम्पा के फूलों पर सोई हो। वे जितना ही ध्यानपूर्वक उसे देखते थे उतना ही उसका मनोहर रूप उन्हें अपनी ओर खींचता था। वे उसकी शोभा बार बार देख कर भी तृप्त न होते थे। उन्होंने चाहा कि एक बार दमयन्ती को छाती से लगा कर आख़िरी बिदा लूँ किन्तु ऐसा करने से वह जाग उठेगी, इस लिए पछता कर रह गये, पर उसे छाती से न लगा सके। पीछे चुपचाप आँसू बहाते हुए वहाँ से बिदा हुए। चलते समय जान पड़ा जैसे किसी ने उनके पैर में बेड़ी डाल दी हो। कुछ दूर जाकर वे फिर लौट आये और दमयन्ती को उसी अवस्था में देख कर फिर रवाना हुए। कुछ दूर जाकर उन्होंने सोचा, "इस बार उससे आख़िरी मुलाकात कर आता हूँ।" फिर आकर उसे देखा वह उसी तरह गम्भीर निद्रा में अचेत पड़ी सो रही थी। पर उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। चन्द्रमा की किरणों में वह आँसू की रेखा सोने की लकीर सी देख पड़ती थी। नल अब वहाँ खड़े नहीं रह सके। उन्होंने दमयन्ती के पास घुटने टेक कर धरती पर बैठ हाथ जोड़ ईश्वर से प्रार्थना की, "भगवान्! आप अन्तर्यामी हैं। आप सब जानते हैं। मैं अपने सुख के लिए दमयन्ती को नहीं छोड़ता हूँ। यदि आपकी कृपा से दमयन्ती को फिर निषध के सिंहासन पर बैठा सकूँगा तभी लौटूँगा, नहीं तो यही मेरी दमयन्ती से आख़िरी बिदाई है। तुम साधु के पालक और सती स्त्रियों के सहायक हो। दमयन्ती की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर सौंपे जाता हूँ।" नल यह कह कर खड़े हुए और दमयन्ती की ओर न देख कर बड़े वेग से निकल चले।

कुछ रात रहते ही दमयन्ती की नींद टूटी। उसने देखा, नल पास नहीं हैं। उसकी साड़ी फटी है। वह चौंक उठी।

उसने सोचा, इतने दिन जिसका डर था वह आज सत्य हुआ। पति के ऐसे निष्ठुर व्यवहार से पतिव्रता दमयन्ती के मन में ज़रा भी क्रोध उत्पन्न न हुआ। वह केवल यही सोच कर बार बार पछताने लगी कि "दोष मेरा ही है। मैं बेख़बर होकर क्यों सो गई? अगर मैं सोती नहीं तो वे मुझे छोड़ कर कभी नहीं जा सकते?" कई बार उसके मन में होता, शायद नल कौतुक के मिस कहीं छिपे हैं, अभी आवेंगे। किन्तु विलम्ब देख कर उसने विचार किया, नल अब भी बहुत दूर न गये होंगे। अभी उनकी खोज करने से वे मिल सकते हैं। यह विचार कर दमयन्ती नल को खोजने चली। किन्तु उस विस्तृत वन में वे किधर गये, इसका कैसे पता लग सकता था। जब नल कहीं दिखाई नहीं दिये तब दमयन्ती व्याकुल हो उन्मादिनी की भाँति इधर-उधर दौड़ने लगी। कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर चारों ओर देखती और चिल्ला कर पुकारती, "नाथ! आप मुझे छोड़ कर कहाँ चले गये? एक बार दर्शन दीजिए।" कभी बालू पर पैर का चिह्न देख कर "नल इसी ओर गये हैं," सोच कर जहाँ तक पैर का चिह्न दिखाई देता था, जाकर फिर लौट आती थी। कभी पतिविरह से हतज्ञान हो पशु, पक्षी, पेड़, पौधे और लता आदि जो सामने मिलता था, उससे नल की बात पूछती थी। इसी तरह तीन दिन बीत गये। इस बीच में उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया, न वह एक बार सोई, बराबर इस जङ्गल से उस जङ्गल में घूमती रही। कब भोर हुआ और कब साँझ हुई, इसकी भी वह कुछ ख़बर न रखती थी। बिना अन्न पानी के उसका शरीर निर्बल हो गया। उसमें अब चलने फिरने का उतना सामर्थ्य न रहा। इसी अवस्था में वह एक दिन एक विशाल अजगर के मुँह के सामने जा पड़ी। अजगर

को देखते ही दमयन्ती के प्राण सूख गये। यद्यपि उसे दौड़ने की शक्ति न थी तो भी वह जी छोड़ कर भागी, सर्प भी अपना विशाल शरीर लेकर बड़े वेग से उसके पीछे दौड़ा। दमयन्ती कहाँ तक दौड़ सकती थी। थोड़ी ही देर में थक कर धरती पर अचेत हो गिर पड़ी। अब दमयन्ती के बचने का कोई उपाय न रहा। साँप उसके पास पहुँच गया और उसे निगलना ही चाहता था, इतने में अकस्मात् उसके मस्तक में एक ऐसा तीर आ लगा कि वह वहीं ढेर हो गया। दमयन्ती ने पीछे की ओर घूम कर देखा तो साँप को मरा पाया। साथ ही इसके एक व्याध भी पेड़ की आड़ से हाथ में धनुष-बाण लिये उस ओर आता दिखाई दिया। दमयन्ती यह समझ कर कि इसी ने मेरे प्राण बचाये, कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए खड़ी हुई। व्याध ने दमयन्ती का परिचय पूछा। दमयन्ती कहने लगी—मैं विपत्ति की मारी स्वामी के साथ इस जङ्गल में आई थी। मेरे स्वामी न मालूम मुझे छोड़ कर कहाँ चले गये। मैं उन्हें खोजते खोजते यहाँ आई और इस अजगर के मुँह में पड़ चुकी थी। आपने दया करके मेरे प्राण बचाये, भगवान् आपका भला करें।

दमयन्ती एक आफ़त से बच कर दूसरी आफ़त में फँसी। दुरात्मा व्याध दमयन्ती को देख कर उसके रूप पर मोहित हो गया। कुछ देर दोनों में बातें हुईं। पीछे व्याध ने कहा—सुन्दरी! तुम मेरे घर चलो। मेरी घरनी होकर रहोगी तो तुम्हें कोई कष्ट न होगा।

दमयन्ती ने उसका मतलब समझ कर कहा—सुनो निषाद! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुम्हें मैं पिता के तुल्य समझती हूँ। भय-त्राता जन्मदाता से कम पूज्य नहीं होता। मैं तुम्हारी कृतज्ञा हूँ।

ऐसी बात न बोलो, जिससे तुम पर मेरी अश्रद्धा उत्पन्न हो। तुम जाओ, ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करेंगे।

तब व्याध ने कभी मधुर वाक्य से सान्त्वना देकर, कभी भय दिखा कर, उसे राज़ी करने की चेष्टा की। दमयन्ती ने उसकी इस पापाभिलाषा पर घृणा दिखलाई और उसे खूब धिक्कारा। इससे क्रुद्ध होकर उसने बल-प्रयोग करना चाहा। दोनों बाँहें फैला कर वह दमयन्ती की ओर दौड़ा। यह देख कर दमयन्ती डर कर वहाँ से विद्युत्-वेग से भाग चली। व्याध भी उसके पीछे पीछे दौड़ा। वह बड़े संकट में पड़ी। जब धर्मरक्षा का कोई उपाय न देखा तब वह हाथ जोड़ अधीर स्वर में बोली—नारायण, वासुदेव! मैं अबला हूँ, यह नरपिशाच ज़बरदस्ती मेरा धर्म बिगाड़ना चाहता है आप मेरी रक्षा करें।

विधाता का चरित्र कौन जान सकता है? पहले ही से आकाश बादल से घिरा था। एकाएक बिजली के प्रकाश से सारी वनभूमि चमक उठी और साथ ही उसके भयङ्कर शब्द से दसों दिशायें प्रतिध्वनित हुईं। समीप ही एक ऊँचे पेड़ पर वज्रपात हुआ। दमयन्ती और व्याध दोनों ही भय से अचेत हो धरती पर गिर पड़े। कुछ देर बाद दमयन्ती ने आँख खोल कर देखा, व्याध निष्प्राण होकर धरती पर पड़ा है। दमयन्ती ईश्वर को धन्यवाद दे वहाँ से चल दी।

नल ने दमयन्ती को विदर्भ जाने का जो रास्ता बतला दिया था, घूमते फिरते वह उसी रास्ते पर आई। देखा, कितने ही व्यापारी अपना सौदा घोड़े, हाथी और बैलों पर लादे हुए उस रास्ते से जा रहे हैं। दमयन्ती उन लोगों के पीछे पीछे जाने लगी। जब साँझ को उन लोगों ने एक सरोवर के किनारे ठहरने

को डेरा डाला तब दमयन्ती भी वहीं रह गई। आधी रात को कितने ही जङ्गली हाथी उस सरोवर में पानी पीने को आये। उन्होंने गवँई हाथी को देख कर क्रुद्ध हो उन पर आक्रमण किया। व्यापारी निःशङ्क-चित्त से सरोवर के तट पर सोये थे। उस समय बड़ी विषम दुर्घना घटी। आक्रमणकारी जङ्गली हाथी और भागनेवाले ग्राम्य हाथियों के द्वारा कितने ही लोग रौंदे गये। उनमें बहुतेरे मर गये। दमयन्ती जगी थी, इस कारण उपद्रव आरम्भ होते ही वहाँ से भाग कर उसने किसी तरह अपने प्राण बचाये परन्तु उसके सर्वाङ्ग काँटों से क्षत-विक्षत हो गये। मूर्ख व्यापारियों ने सोचा—"आज तक कभी ऐसी अनिष्ट घटना न घटी थी, अवश्य ही इस अभागिन स्त्री के आने से यह उपद्रव हुआ है।" उन लोगों ने दमयन्ती को जान से मार डालने का विचार किया और कह दिया कि अब तुम हम लोगों के साथ जाओगी तो तुम्हारी जान न बचेगी। जाने का इरादा छोड़ दो, या जान से हाथ धो बैठो। यह सुन कर दमयन्ती ने उन लोगों का साथ छोड़ दिया। वह अकेली घूमती फिरती चेदिदेश में जा पहुँची। उसका फटा पुराना कपड़ा, खुले हुए रूखे केश, बदन में धूल और कीचड़ लगी देख कर शहर के लड़कों ने समझा, शायद यह स्त्री पगली है। फिर क्या था, वे सबके सब झुंड बाँध कर तालियाँ बजाते और उसके ऊपर धूल उड़ाते हुए उसके पीछे पीछे चले। दमयन्ती उन बालकों से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए किसी अच्छे व्यक्ति का सहारा ढूँढ़ने लगी। जब वह उस अवस्था में राजभवन के पास आई तब रानी ने उसे देखा। दमयन्ती को उस अवस्था में अनाथिनी की भाँति बिलखती देख कर उन्हें दया लगी। उन्होंने दासी से

कह कर उसे भीतर बुला लिया और करुणा भरे स्वर में कहा—तुम कौन हो ? इस दुरवस्था में भी तुम्हारा स्वरूप देखने से जान पड़ता है, तुम किसी अच्छे घर की बहू-बेटी हो । तुम इस तरह अकेली क्यों घूम रही हो ?

रानी की पवित्र मूर्ति देखने और उनकी मीठी बात सुनने से दमयन्ती को बड़ा सन्तोष हुआ । वह उन्हें प्रणाम करके बोली—मैं अपना हाल क्या कहूँ ? एक समय मैं अत्यन्त सुख में प्राप्त थी । मेरा घर धन-जन से भरा था । किन्तु मेरे स्वामी जुए में सर्वस्व हार कर मुझे साथ ले वन में आये थे । एक दिन वे मुझको छोड़ कर कहीं चले गये, तब से मैं बराबर उनकी खोज में घूमती फिरती हूँ । कहीं उनका पता नहीं लगता ।

यह कहते कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये । रानी भी अपने आँसुओं को न रोक सकीं । उन्होंने कहा—बेटी ! तुम रोओ मत । धीरज धरो । मेरे यहाँ रहो । मैं तुम्हारे स्वामी की खोज में आदमी भेजूँगी । तुम जितने दिन मेरे यहाँ रहोगी, तुम्हें कोई क्लेश न होगा ।

रानी की बात सुन कर दमयन्ती ने कहा—आपका कोमल स्वभाव देख कर आपके पास रहने को मेरा जी चाहता है । किन्तु मेरे कई एक नियम हैं, जिनकी रक्षा आपको करनी होगी । मैं न किसी का जूँठा खाऊँगी, न किसी के पैर पखारूँगी, पर-पुरुष के साथ बात न करूँगी और यदि कोई पुरुष मेरी ओर कुदृष्टि से देखे तो आप उसे उचित दण्ड दीजिएगा ।

"ऐसा ही होगा" कह कर रानी ने अपनी बेटी को बुला कर कहा—सुनन्दा ! मैंने इसे अपने यहाँ रक्खा है । यह तुम्हारी बराबर उम्र की है । आज से तुम इसे सखी की तरह

और अपनी सगी बहन की तरह समझ कर इसके साथ अच्छा बर्ताव करना।

सुनन्दा माता की आज्ञा से दमयन्ती को अपने घर ले गई और यथोचित स्नेह और अच्छे व्यवहार से उसकी खातिर की। दमयन्ती चेदि-राज्य की अधीश्वरी के आश्रय में रह कर सुख से समय बिताने लगी।

इधर नल दमयन्ती को छोड़ कर बड़ी तेज़ी से निकल चले; किन्तु दमयन्ती की चिन्ता उन्हें पग पग में पराभूत करने लगी। वे कुछ दूर आगे जाते थे और पीछे की ओर घूम कर देखते थे। उनके मन में होता था जैसे दमयन्ती रोती हुई उनके साथ आ रही है। कभी उन्हें यह जान पड़ता था कि दमयन्ती जैसे खूब ज़ोर से पुकार कर उनसे कह रही है—"नाथ! मुझे छोड़ कर आप अकेले कहाँ जा रहे हैं, खड़े हो, मैं भी आपके साथ जाऊँगी।" वे पीछे घूम कर देखते थे, कोई कहीं नहीं। कभी उनके मन में होता था, जैसे कोई स्त्री बिलख बिलख कर रो रही है। जब अच्छी तरह ध्यान देकर सुनते थे, तब उन्हें मालूम होता था कि हवा बाँस के रन्ध्र में प्रवेश करके जो शब्द उत्पन्न कर रही है, उसी को उन्होंने दमयन्ती का रोना समझ लिया था। इसी तरह आगे बढ़ते बढ़ते एक दिन नल ने देखा कि सामने जङ्गल के भीतर आग धधक रही है। नज़दीक जाकर देखा, एक गड्ढे के चारों ओर आग लगी है। उसके भीतर एक बहुत बड़ा साँप आग की लपट से झुलस रहा है। मारे कष्ट के वह खूब ज़ोर से साँस ले रहा है और जीभ लपलपा रहा है। यह देख कर नल ने समझा, कुछ ही देर में साँप आग में जल कर खाक हो जायगा। मनुष्य हो, या कोई और ही प्राणी हो, नल किसी को संकट में पड़ा देख

यथासाध्य उसकी रक्षा का उपाय करते थे, इसलिए उन्होंने साँप को किसी तरह बचा लेने की बात सोची। किन्तु स्वभाव-दुष्ट साँप की रक्षा करने के लिए जाकर उन पर क्या बीतेगी, यह भी उन्होंने जाना। आख़िर अपने ऊपर विपद् आने की आशङ्का रहते भी उन्होंने सर्प की रक्षा करना ही उचित समझा। वे झट आग के भीतर प्रवेश करके दोनों हाथों से साँप को उठा कर बाहर ले आये। परन्तु इससे हुआ क्या? उनका अङ्ग आग में झुलस गया और दो चार डग आते न आते साँप ने भी उन्हें काट खाया। तो भी वह उसको न छोड़ कर निरापद् स्थान में ले आये। इस समय नल ने आकाशवाणी सुनी—"तुम इस उपकार का फल अवश्य पाओगे।" नल अब वहाँ रहने की कोई आवश्यकता न समझ जङ्गल से बाहर हो अयोध्या की ओर रवाना हुए। उन्होंने देखा, साँप के काटने से कुछ विशेष अनिष्ट नहीं हुआ। केवल उसके विष से उनके शरीर की त्वचा विवर्ण हो गई और मुख की कान्ति जो पहले थी न रही। उन्होंने सोचा, छद्मवेश के लिए विधाता ने जो ऐसा कुरूप कर दिया है सो अच्छा ही हुआ।

उन्होंने अयोध्या पहुँच कर राजा ऋतुपर्ण से भेंट की और सारथि के काम पर नियुक्त करने की प्रार्थना की। ऋतुपर्ण बहुत दिनों से एक योग्य सारथि की खोज में थे। नल की बात-चीत से प्रसन्न होकर उसने उन्हें अपने अस्तबल का जमादार बनाया। नल की नई शिक्षा से ऋतुपर्ण के घोड़े थोड़े ही दिनों में खब सुशिक्षित हो गये। यह देख कर ऋतुपर्ण नल पर बहुत प्रसन्न हुआ।

विदर्भ के महाराज भीमदेव ने जब बेटी और जामाता के देशत्याग की बात सुनी तब उन्होंने शोकार्त होकर दोनों की खोज

में जहाँ तहाँ अनेक दूत भेजे । उनमें सुदेव नामक एक दूत ने चेदि-राजधानी में उपस्थित होकर एक दिन दैवयोग से दमयन्ती को देखा । दमयन्ती ने भी उन्हें पहचान लिया और दासी के द्वारा उन्हें भीतर बुला भेजा । रानी को सब बात मालूम हुई । दमयन्ती का परिचय पाकर उन्होंने जाना, 'वह उनकी सगी बहन की बेटी है ।' तब तो उन्होंने बड़े स्नेह से दमयन्ती को भूषण-वसन से विभूषित कर अपने आदमी के साथ उसे सम्मानपूर्वक पिता के घर भेज दिया । उसके माता-पिता खोई हुई कन्या को पाकर बार बार अपने भाग्य को सराहने लगे ।

दमयन्ती पिता के घर जाकर बड़े आराम से रहने लगी, पर उसका जी बराबर उदास रहता था । नल के लिए उसकी आँखों में दिन-रात आँसू भरे ही रहते थे । चिन्ता से उसका शरीर दिनों दिन खिन्न और कान्तिहीन होने लगा । महारानी ने कन्या की अवस्था महाराज से कह कर नल के खोजने के लिए फिर देश देश दूत भिजवाये । दमयन्ती ने दूतों को बुला कर कहा—आप लोग नगर, गाँव, तीर्थ और तपोवन जहाँ जायँ, सब जगह लोगों से कहना—"पत्नी का प्रतिपालन करना पति का परम धर्म है । धन्य वे पुरुष हैं जो पतिव्रता स्त्री के विरुद्ध आचरण करते हैं ! एक सज्जन अपनी अनुरागिणी पत्नी को जङ्गल के भीतर सोई हुई छोड़ उसकी आधी साड़ी पहन कर कहाँ भाग गये, इसका पता नहीं ।" यदि इस पर कोई कुछ बोले और उस व्यक्ति का पता बतावे तो आप लोग मेरे पास उसकी ख़बर दें और उनका पूरा परिचय भी पूछते आवें । यह कह कर दमयन्ती ने ब्राह्मणों को प्रणाम करके बिदा किया ।

बहुत दिनों के अनन्तर पर्णाद नाम के एक ब्राह्मण ने लौट

कर दमयन्ती से कहा—राजकुमारी! मैं तुम्हारे पति की खोज में बहुत जगह घूमा पर वे न मिले। मैं जहाँ जहाँ गया, सर्वत्र तुम्हारे आदेशानुसार बात कही पर किसी ने कुछ उत्तर न दिया। आखिर मैंने अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण की सभा में जाकर आपकी कही बात सबको सुनाई। उस पर राजा या राज-सम्बन्धी कोई कुछ न बोला। केवल राजा के एक सारथि ने वह बात सुन कर मुझे एकान्त में ले जाकर बराबर तुम्हारा और तुम्हारी सन्तानों का कुशल पूछा। उसकी बातचीत से जान पड़ा जैसे वह तुम्हारे दुःख से अत्यन्त दुखी हो। क्या उसने निषध में तुम्हारे यहाँ सारथि का काम किया था?

दमयन्ती—उसका नाम कहिए तो मालूम हो।

पर्णाद—नाम उसका बाहुक है।

दमयन्ती—इस नाम का कोई आदमी मेरे यहाँ सारथि था, स्मरण में नहीं आता। अच्छा, उसका शील-स्वभाव और स्वरूप कैसा है?

पर्णाद—वह देखने में अत्यन्त कुरूप है। उसका शरीर काला है, किन्तु उसके शील-स्वभाव के सम्बन्ध में जो कुछ मालूम हुआ है, उससे वह अच्छे कुल का जान पड़ता है। वह सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय और दयालु है। छोटे काम पर नियुक्त होने पर भी वह अपने गुण से मन्त्री की भाँति ऋतुपर्ण के यहाँ आदरणीय और विश्वासपात्र समझा जाता है। राजा के और जितने सारथि और घोड़ों के सईस वग़ैरह हैं, सभी उसमें निश्चल भक्ति रखते हैं। वह पूर्ण विद्वान् है, लोगों के मुँह से सुना कि रथ चलाने में उसकी बराबरी करनेवाला संसार में विरला ही कोई होगा।

दमयन्ती—क्या उनकी दिनचर्य्या के विषय में भी कुछ सुना?

पर्णाद—उसे तुम्हारी बात पूछते सुन कर मैंने उसके आचार-व्यवहार के विषय में भी बहुत बातों की खोज की। वह नित्य स्नान करके अग्निहोत्र करता है, बड़ी पवित्रता से रहता है। अपने नियत कार्य्य से छुट्टी पाने पर एकान्त में बैठ कर शास्त्र की चिन्ता और परमेश्वर के ध्यान में समय बिताता है। पर आश्चर्य की बात यह है कि वह विशेष धर्मात्मा और सबका प्रियपात्र होने पर भी सदा उदास और चिन्तित रहता है। सुना है कि रात का अधिक भाग वह रोकर ही बिताता है। उसकी एक और विचित्र टेव यह है कि वह अपना एक पुराना, मैला कपड़ा जहाँ जाता है, साथ लिये जाता है। कभी कभी तो उस पुराने कपड़े को छाती पर रख कर आँसू बहाता है। पर ऐसा वह क्यों करता है, यह कोई नहीं जानता। उसके सम्बन्ध में मैं जो कुछ देख सुन आया हूँ वह आपसे कह सुनाया। अब आपका जो कर्त्तव्य हो कीजिए।

दमयन्ती ने योग्य पुरस्कार से पर्णाद को प्रसन्न करके बिदा किया। पर्णाद की बात से उसे पूरा विश्वास हो गया कि वह बाहुक ही नल हैं। परन्तु दो बातों से उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। प्रथम यह कि पर्णाद ने कहा—वह देखने में बड़ा कुरूप है। वे तो कुरूप नहीं हैं, तो क्या किसी रोग ने उनकी सुन्दरता हर ली? दूसरे नल शस्त्र और शास्त्र दोनों ही में अद्वितीय पण्डित हैं। यदि संकट में पड़कर उन्हें दूसरे की नौकरी करनी पड़ी तो उन्होंने मन्त्री या सेनापति का कार्य न करके सारथि का काम क्यों किया? जो कुछ हो, जब नल के साथ बाहुक का इतना सादृश्य है तब एक बार उसे अवश्य देखना चाहिए। यह सोच विचार कर दमयन्ती माता के पास गई और

पर्णाद् की कही हुई सब बातें सुनाकर माँ से कहा—माँ! मैं राजा ऋतुपर्ण और बाहुक को यहाँ बुलाने के लिए एक उपाय रचूँगी। आप अभी पिता से कुछ न कहें। सुदेव को एक बार मेरे पास बुला दीजिए। वह अत्यन्त बुद्धिमान् और कार्यसाधन में कुशल है। उसके द्वारा मेरे विचार के अनुसार कार्य होगा।

रानी की आज्ञा से सुदेव अन्तःपुर में आया। दमयन्ती ने उससे कहा—"आप एक बार अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण के पास जाइए। उनसे कहिएगा कि बहुत दिन हुए नल दमयन्ती को छोड़ कर कहाँ गये, इसका कुछ पता नहीं। इसलिए दमयन्ती ने दूसरा पति करने का विचार किया है। स्वयंवर का दिन क़रीब आ गया। यदि आपकी इच्छा हो तो आप आज ही विदर्भ को चल दीजिए। मैं किस अभिप्राय से आपके पास आया हूँ, यह आपको पीछे मालूम होगा, अभी यह बात आप किसी से न कहिए।"

"जो आज्ञा" कह कर सुदेव विदा हुआ। कुछ दिन में राजा ऋतुपर्ण के पास पहुँच कर उसने दमयन्ती का संवाद उनसे कहा। ऋतुपर्ण दमयन्ती के रूप-गुण की बात सुन कर पहले ही से उस पर ऐसे आसक्त थे कि उसका दूसरा स्वयंवर होना सम्भव है या नहीं, इस पर कुछ विचार न किया। वे सुदेव को विदा करके विदर्भ जाने की तैयारी करने लगे। दमयन्ती ने अयोध्या से विदर्भ जाने का मार्ग दूर और दुर्गम जान कर कल्पित स्वयंवर का दिन इतना समीप नियत कर दिया था कि विशेष सुशिक्षित घोड़े और परम प्रवीण सारथि के बिना कोई रास्ता तय करके ठीक समय पर स्वयंवर में उपस्थित न हो सकता था। ऋतुपर्ण ने बाहुक को बुला कर कहा—देखो बाहुक! विदर्भ के राजा भीमदेव

की बेटी दमयन्ती का दूसरा स्वयंवर होनेवाला है। मैं आज ही विदर्भ की यात्रा करूँगा। तुमने पहले कहा था कि 'घोड़ा हाँकने में तुम बड़े प्रवीण हो, रथ चलाने में शायद ही कोई तुम्हारा मुक़ाबला कर सके।' आज तुम अपनी प्रवीणता दिखाओ। यदि तुम ठीक समय पर मुझे विदर्भ पहुँचा सकोगे तो तुम जो माँगोगे वह मैं अवश्य दूँगा।

दमयन्ती का दूसरा स्वयंवर होगा, यह संवाद नल के हृदय में बाण की तरह लगा। उसका सिर घूमने लगा। वह अपने मनोगत भाव को छिपा कर बोला—महाराज की आज्ञा पालने के लिए मैं पूरी चेष्टा करूँगा। आप तैयार हों।

यह कह कर नल घोड़ा-गाड़ी जोत कर लाने गया। परन्तु ऋतुपर्ण की बात सुन कर उसका हृदय भीतर ही भीतर शोक से जल रहा था। उसने सोचा—"दमयन्ती सी पतिव्रता स्त्री क्या कभी दूसरे पति को वर सकती है? उसका दूसरा स्वयंवर होना क्या कभी सम्भव है? हो भी सकता है, मेरे सदृश पत्नीद्रोही नराधम को दण्ड देने के लिए विधाता असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं! दमयन्ती का स्वयंवर बिना अपनी आँखों देखे मेरे पाप का प्रायश्चित्त न होगा। इसलिए विधाता मुझको इस रूप में वहाँ लिये जा रहे हैं।" फिर उसने सोचा, "यह कभी नहीं हो सकता। चन्द्रमा अपनी शीतलता छोड़ सकता है, पर दमयन्ती कभी अपना धर्म नहीं त्याग सकती। मैं दमयन्ती के ऊपर अविश्वास करके अपने ऊपर पाप का बोझ न लूँगा।"

ऋतुपर्ण रथ पर आरूढ़ हो विदर्भ को रवाना हुए। नल असाधारण प्रवीणता दिखलाता हुआ दुर्गम पहाड़ी भूमि, कीचड़

से भरा हुआ मार्ग और दुर्भेद्य जङ्गल को अतिक्रम कर नियत दिन के प्रातःकाल ही वहाँ पहुँच गया। ऋतुपर्ण उसके घोड़ा हाँकने की निपुणता, कार्यतत्परता और श्रमसहिष्णुता देखकर बड़े विस्मित और खुश हुए। विदर्भ-राजधानी के पास आ जाने पर उन्होंने बाहुक से कहा—"मैं तुम्हारे ही गुण से स्वयंवर होने के पूर्व यहाँ पहुँच गया। इससे जान पड़ता है मेरी कामना सिद्ध होगी। यदि वह सर्वाङ्गसुन्दरी दमयन्ती आज मुझे स्वयंवर में स्वीकार करेगी तो तुमको दस गाँव, एक हज़ार अशरफ़ी और एक बहुमूल्य पगड़ी इनाम दूँगा।" ऋतुपर्ण न जानते थे कि वे बाहुक के पास इनाम का प्रलोभन क्या दे रहे थे मानो विष उगल रहे थे। बाहुक ने कुछ उत्तर न दिया।

थोड़ी ही देर में ऋतुपर्ण का सुखस्वप्न भङ्ग हुआ। उन्होंने राजधानी में प्रवेश करके देखा, स्वयंवर की कहीं कुछ चर्चा भी नहीं है। तब उन्होंने जाना, किसी ने झूठी खबर देकर उन्हें ठग लिया। वे अपने आने के उद्देश्य को छिपा कर राजा भीमदेव से मिले। भीम ने उनके इस प्रकार अनवसर आने का कारण पूछा। वे मारे लज्जा के यथार्थ कारण न बता सके। "बहुत दिन से भेंट नहीं हुई थी, इसलिए आपसे भेंट करने आया हूँ।" यही उत्तर उन्होंने दिया।

इधर दमयन्ती बड़े उत्सुकचित्त से राजा ऋतुपर्ण और उनके सारथि बाहुक के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। इस बात पर उसे पूरा विश्वास था कि नल के सदृश असाधारण सारथि के सिवा दूसरा कोई उतने थोड़े समय में अयोध्या से विदर्भ नहीं आ सकता। इस समय वह बार बार की सुनी रथ की घर्घराहट सुन कर समझ गई कि इस रथ के चलानेवाले अवश्य ही नल

होंगे। उसने कोठे की छत पर से बाहुक को देखा, किन्तु दूर के कारण और नल की सूरत-शकल बदल जाने के कारण वह कुछ निश्चय न कर सकी। तब उसने बाहुक की जाँच के लिए अपनी एक विश्वासपात्री दासी को उसके पास भेजा। बाहुक का उत्तर सुन कर दासी का सन्देह और भी दृढ़ हुआ। उसने दमयन्ती के पास आकर बाहुक की अनेक अलौकिक शक्ति की बातें कहीं। बाहुक बिना आग के लकड़ी जला सकता है। वह अपनी दृष्टि के द्वारा ख़ाली घड़े को पानी से भर सकता है और भी ऐसी अनेक बातें उसने कहीं। किन्तु दमयन्ती ने अलौकिक गुणों की अपेक्षा लौकिक गुणों से ही बाहुक की परीक्षा लेनी चाही। उसने बाहुक के हाथ की बनाई तरकारी खाई और उसमें वही स्वाद पाया जो नल की बनाई तरकारी में पाती थी। इसके बाद उसने अपने बेटे और बेटी को दासी के साथ बाहुक के पास भेजा। बहुत दिनों के अनन्तर बेटे-बेटी को देखकर बाहुकरूपी नल अपने को न सँभाल सका। वह उन्हें गोद में बिठा कर बारंबार उनका मुह चूमने और लाड़ प्यार करने लगा। उसकी आँखों में आँसू भर आये, सारा शरीर कण्टकित हो गया। पीछे दासी मन का भाव लख न ले, इस भय से उसने लड़के लड़की को गोद से उतार कर कहा—मेरे भी ऐसे ही दो बालक हैं। इन्हें देख कर उनका स्मरण हो आया। इसीसे मैं अपने को न रोक सका। तुम इसके लिए मन में और कुछ बात न समझो।

दासी ने लौट कर दमयन्ती से सब बातें कहीं।

दमयन्ती के मन में अब कुछ संदेह न रहा, तो भी उसने बाहुक को एक बार अपनी आँख से देखना उचित समझ उसे अन्तःपुर में बुला भेजने के लिए माता से प्रार्थना की। रानी ने राजा भीम

से सलाह ले बाहुक को भीतर बुलाया। चिर-वियोग के अनन्तर नल और दमयन्ती की परस्पर भेंट हुई। दोनों के रङ्ग-रूप में बहुत कुछ हेर फेर हो गया था। नल ने देखा, स्वयंवर की सभा में जिस दमयन्ती ने विकसित कमलिनी की भाँति अपनी शोभा और सुगन्ध से हज़ारों व्यक्तियों के मन को अपनी ओर खींच लिया था, आज वह सायङ्कालिक पद्मिनी की भाँति कुम्हलाई हुई सौरभहीन देख पड़ती है। वह गेरुआ कपड़ा पहने योगिन सी बनी है। सिर में कभी तेल-कंघी न लगने से केश जटिल और भूरे हो गये हैं। गाल पीले पड़ गये हैं। होंठ सूखे हैं। शरीर में एक भी अलङ्कार नहीं है। उसी पुराने आधे कपड़े से कमर से ऊपर के अङ्ग को छिपाये है। वही साड़ी का आधा टुकड़ा उसके जीवन का आधार हो रहा है। पतिव्रता दमयन्ती की वह विषादभरी मूर्ति देख कर नल का हृदय विदीर्ण हुआ। दमयन्ती ने भी देखा, नल का वह गाम्भीर्य सुन्दर बलिष्ठ शरीर राहुग्रस्त चन्द्रमा की भाँति प्रकाश-हीन और अत्यन्त कृश दिखाई दे रहा है। उनके चेहरे पर कालापन छा गया है। सेवा-वृत्ति के अवलम्बन से उनके शरीर की अवस्था कुछ और ही सी हो गई है। नल की दशा देख कर दमयन्ती का हृदय काँप उठा। नल के स्वरूप में इतना अन्तर पड़ गया था कि जिन्होंने नल को पहले देखा था वे उसे न पहचान सके। किन्तु पतिव्रता स्त्री के पास क्या पति कभी छिपे रह सकते हैं? दमयन्ती, बाहुक में नल के सम्पूर्ण लक्षण देख, उनके पैरों पर गिर पड़ी। फिर जो कुछ हुआ, वह कहना बाहुल्यमात्र है। गर्म आँसू के साथ गर्म आँसू का, दीर्घ निःश्वास के साथ दीर्घ निःश्वास का, और उमगती हुई छाती के साथ उमगती छाती का मिलन हुआ। दोनों के चिर-

सन्तप्त हृदय ठण्डे हुए। नल जिस रात को दमयन्ती की साड़ी में से आधा फाड़ कर निकल भागे, उस समय से आज तक दोनों ने किस कष्ट से समय बिताया, दोनों पर क्या क्या आपदायें आईं, वह परस्पर कहते ही कहते सारी रात बीत गई। दोनों में किसी की एक बार भी आँख न लगी।

भोर होते ही यह शुभ संवाद चारों ओर फैल गया। विदर्भ के प्रजागण रानी और राजा को बेटी-जमाई के शोक में निमग्न देख कर किसी तरह का उत्सव न मनाते थे। सब उदास रहा करते थे। अब वे लोग यह शुभ संवाद पा बड़े उत्साह से आनन्दोत्सव की तैयारी करने लगे।

राजा ऋतुपर्ण को जब मालूम हुआ कि उनका सारथि बाहुक ही नल हैं तब वे दमयन्ती के प्रति लालसा दिखलाने के कारण लज्जा से म्रियमाण हुए। आखिर उन्होंने नल की प्रार्थना के अनुसार उन्हें द्यूतविद्या सिखला दी, और उनसे रथ हाँकने की शिक्षा पाकर प्रसन्न मन से अयोध्या को लौट गये। नल जुए में जब से सर्वस्व हार कर पुष्कर के द्वारा अपमानित हुए थे तब से उनका हृदय दिन रात शोक से जला करता था। वे कुछ दिन उपरान्त दमयन्ती को विदर्भ में ही रख ससुर से आज्ञा ले निषध को गये और पुष्कर को फिर जुआ खेलने के लिए बुला भेजा। साथ ही इसके यह भी कहला भेजा कि जुआ खेलना मंजूर न हो तो लड़ने के लिए तैयार हो।

पुष्कर पहले ही से दमयन्ती को चाहता था। पर यह मनोगत भाव प्रकाश करने का उसे पहले कभी साहस न होता था। इस समय धनमद में मत्त होकर उसने बड़ी धृष्टता के साथ कहा—आज मेरा चिरमनोरथ सफल हुआ। तुम्हारी समस्त धनसम्पत्ति

मेरे हाथ में आजाने से अब दमयन्ती आप ही यहाँ आकर मेरी सेवा करेगी। इसलिए अब विलम्ब करने की ज़रूरत क्या? शीघ्र ही जुआ आरम्भ हो। मैं खेलने को तैयार हूँ।

दोनों फिर जुआ खेलने लगे। पुष्कर ने सोचा था, "पहले की तरह इस बार भी नल को सहज ही में जीत लूँगा।" पर यह न हुआ, पुष्कर प्रति बार हारने लगा। नल ने क्रमशः उसका राज्य, धन और प्राण तक जुए में जीत लिये। तब उन्होंने पुष्कर से कहा—दुष्ट! नराधम! तुम मातृतुल्य भौजाई पर बुरी इच्छा रखते थे। इसलिए प्राणवध ही तुम्हारा उचित दण्ड है। किन्तु विधिवश इस समय तुम्हारी वह अवस्था होगई कि दमयन्ती के पाने की लालसा तो दूर की बात है, मैं चाहूँ तो अब तुमसे उसकी सेवा कराऊँ। परन्तु तुम मेरे छोटे भाई हो, कठिन अपराध करने पर भी तुम्हारा मुँह देख कर मेरे मन में दया उपज आती है। भ्रातृस्नेह बड़ा प्रबल होता है, इसलिए मैंने तुमको छोड़ दिया। तुम्हें प्राणदण्ड देकर मैं अपने ऊपर भ्रातृवध का कलङ्क लेना नहीं चाहता। तुम्हारी धन-सम्पत्ति भी मैंने तुमको लौटा दी। फिर कभी ऐसा खोटा काम न करना। जाओ, मैं असीस देता हूँ, तुम धर्मपथ पर आरूढ़ होकर दीर्घजीवी हो और सुख से समय बिताओ।

पुष्कर भाई के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करके अपने घर गया। नल विदर्भ से दमयन्ती को अपनी राजधानी में ले आये। दोनों पुत्रवत् प्रजापालन और धर्म्माचरण से सुखपूर्वक समय बिताने लगे। सभी लोग दमयन्ती रानी और राजा नल की धर्मनिष्ठा पर धन्य धन्य करने लगे। दमयन्ती जैसी गुणवती थी, नल भी वैसे ही गुणवान थे। सत्यरक्षा के लिए दमयन्ती के पास नल का

देवदूत बनकर जाना और निष्कपट भाव से दूत का कार्य्य करना, जलते हुए साँप को आग के बीच से बाहर निकाल कर उसकी रक्षा के लिए अपने प्राण का मोह न करना, और पुष्कर के सदृश दुष्ट भाई का अपराध क्षमा कर देना उनकी महानुभावता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। जब तक यह वसुन्धरा रहेगी तब तक उनका पवित्र नाम प्रातःस्मरणीय रहेगा। वे जो "पुण्यश्लोक" की असाधारण उपाधि से भूषित हुए, यह सर्वथा उनके योग्य ही हुआ। दमयन्ती के साथ नल का मिलाप मणि-काञ्चन के मेल के बराबर उपयुक्त हुआ, इसमें सन्देह नहीं। "मणिकाञ्चन-संयोगः कस्य न नयनोत्सवं तनुते।"

छठा आख्यान

शकुन्तला

दिनकर भगवान् के उदय से हिमालय पहाड़ के नीचे की वनभूमि सुनहले रङ्ग में बोरी हुई सी जान पड़ती थी। प्रातःकाल के खिले फूल चारों ओर सुगन्ध फैला रहे थे। पक्षिगण कलरव से अपने मन की उमङ्ग प्रकट कर रहे थे। ऐसे समय में हस्तिनापुर के महाराज दुष्यन्त अपने अनुचर-वर्ग के साथ शिकार खेलने के लिए वहाँ आये। जङ्गल स्वभाव से ही निस्तब्ध और गम्भीर होता है, इस समय आखेट के कोलाहल से उसकी निस्तब्धता भङ्ग हो गई। बड़े बड़े विशाल पेड़ लताओं से लिपटे हुए खड़े थे। उनके डाल-पात इतने घने थे कि उसके भीतर से सूर्य्य की किरण नीचे नहीं आने पाती थी। इस कारण दिन में भी वहाँ अन्धकार का ही साम्राज्य रहता था। जङ्गल का कोई स्थान कटीले पौधों से घिरा था, कहीं काँस ही काँस देख पड़ता था, कहीं पत्थर के बड़े बड़े टुकड़े पड़े थे। कहीं समतल भूमि, कहीं ऊँची नीची, कहीं छोटे छोटे सोतों में सूखे हुए पत्तों के सड़ने से जल बिगड़ गया था। वे उसी विकृत जल को लिये धीरे धीरे बह रहे थे। कहीं झरने का पानी शब्द करता हुआ नीचे गिर रहा था। राजा दुष्यन्त के अनुचर-वर्ग छोटे छोटे दल बाँध कर इस जङ्गल को चारों ओर से घेरे खड़े थे, कहीं सूखी लकड़ियों का ढेर आग लगने से धधक रहा

था। कहीं डफ, बाँसुरी, ढोल और मृदङ्ग आदि भाँति भाँति के बाजे बज रहे थे। वन से बाहर होने का मार्ग ताँत के बनाये हुए जाल से घिरा था। हथियारबन्द सिपाही सतर्कभाव से वहाँ खड़े थे। जङ्गल के प्रत्येक स्थान का परिचय रखनेवाले वनरखे भिल्ल किरात जङ्गल में शिकार खोजने की इच्छा से इधर-उधर दौड़ रहे थे। उनके बाँयें हाथ में सिंगा और दाहने हाथ में बर्छी थी। कमर में छुरी लटक रही थी। साथ में बड़े बड़े शिकारी कुत्ते थे। वे जङ्गली मनुष्य कभी सिंगा बजा कर परस्पर एक दूसरे को सङ्केत-द्वारा कुछ कहते थे। कभी किसी ऊँचे पेड़ पर चढ़कर अपने साथियों को पुकार कर कहते थे—"यह देखो, जङ्गली भैंसों का झुंड उस तरफ़ जा रहा है, यह हिरणों का यूथ सामने दिखाई दे रहा है, वह एकदन्ता हाथी इस ओर आ रहा है, यह देखो, सामने की झाड़ी से एक सेल्टा बाघ निकला है।" मोर, तीतर और तोते आदि पक्षी डर कर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ कर बैठते थे। उनके भयसूचक शब्दों से जङ्गल की शान्ति में व्याघात पहुँच रहा था। राजा दुष्यन्त ने वन में प्रवेश करने योग्य दो पहिये की छोटी सी गाड़ी पर आरूढ़ होकर इस घने जङ्गल के भीतर प्रवेश किया। सारथि के सिवा उनके साथ में और कोई न था। हिरन के पीछे पड़ कर वे और साथियों को पीछे छोड़ आये थे। एक बहुत सुन्दर हिरन उनके सामने वायु-वेग से भागा जा रहा था। राजा का रथ भी उसके पीछे पीछे जा रहा था। जङ्गल स्वभावतः पेड़-पौधों से भरा रहता है, और रास्ता भी अच्छा नहीं, इस कारण सारथि बहुत आयास करने पर भी रथ को वहाँ तक नहीं ले जा सकता था जहाँ से राजा को हिरन पर बाण चलाने का सुभीता होता। हिरन के पीछे रथ कई

कोस आगे निकल गया, घोड़े के मुँह से झाग बह चला। राजा के सिर से भी पसीना चूने लगा, तो भी रथ हिरन के पास तक न जा सका। आख़िर रथ जङ्गल को पार कर मैदान में आया। जङ्गल का दृश्य पीछे पड़ा; सामने दूसरा ही दृश्य आ पड़ा। किन्तु राजा और सारथि की दृष्टि थी हिरन के ऊपर। और वस्तु देखने का उन्हें अवसर न था।

सारथि ने कहा--महाराज! मैं इतनी देर ऊँची नीची ज़मीन में इच्छानुसार रथ नहीं चला सकता था। अब मैदान में आया। देखना है, मृग भाग कर कहाँ जाता है?

राजा—"देखो, मैं इस हिरन को अभी मारता हूँ।" साथ ही उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया। किन्तु बाण फेंकने के पूर्व ही दो तपस्वी एक पेड़ की आड़ से बाहर हो चिल्ला कर बोले—"महाराज! यह आश्रम का मृग है। इसे मत मारो।" यह सुन कर सारथि ने राजा से कहा—महाराज, दो तपस्वी इस हिरन के मारने का निषेध कर रहे हैं।

राजा—तो शीघ्र घोड़े की वाग रोको।

सारथि ने घोड़े को रोका। इसी समय शिष्य सहित एक मुनि राजा के सामने आकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोले—

महाराज! यह आश्रम का मृग है, इसे न मारें। दीन दुखियों के रक्षार्थ ही आपका अस्त्र है न कि निरपराधी के वधार्थ। राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहा--"अब मैं इसे न मारूँगा।" यह कह कर बाण को प्रत्यञ्चा पर से उतार कर तरकस में रख लिया।

तपस्वी ने आशीर्वाद देकर कहा--महाराज! आप जिस उच्च वंश में उत्पन्न हुए हैं, यह कार्य उसके अनुकूल ही हुआ

है। मैं आशीर्वाद करता हूँ, आपको आप ही के सदृश गुणवान् चक्रवर्ती पुत्र हो।

राजा—मैंने आपका आशीर्वाद माथे चढ़ाया।

तपस्वी—महाराज! हम होम की लकड़ी लाने जाते हैं। यहाँ से समीप ही कण्व ऋषि का आश्रम है, देखिए, वह दिखाई देता है। यदि आपके दूसरे कार्य में बाधा न पड़े तो आप वहाँ चलकर आज हम लोगों के अतिथि हों। तपोवन देखने से आप जान सकेंगे कि आपके प्रताप से केवल ग्रामवासी ही नहीं, तपोवन के निवासी भी निर्विघ्नतापूर्वक अपने धर्म का पालन कर रहे हैं।

राजा—क्या महर्षि (कण्व) इस समय आश्रम में हैं?

तपस्वी—नहीं। वे अपनी कन्या शकुन्तला के ऊपर अतिथि-सत्कार का भार देकर आप शकुन्तला की किसी अनिष्ट दशा के शान्त्यर्थ सोमतीर्थ गये हैं।

राजा—अच्छा। मैं उनके आश्रम में जाकर शकुन्तला का दर्शन करूँगा। मैं उनके आश्रम के समीप आकर बिना उनके आश्रम का दर्शन किये कैसे जा सकता हूँ? यह मेरी विनय-प्रार्थना है कि जब वे तीर्थ से आवें, तब उनसे कह दीजिएगा।

दोनों तपस्वी राजा को आशीर्वाद देकर चले गये। राजा ने सारथि को रथ आगे बढ़ाने की आज्ञा दी। रथ ज्यों ज्यों आगे जाने लगा त्यों त्यों पहाड़ी भूमि की कुछ और ही शोभा दिखाई देने लगी। चारों ओर समतल भूमि, जिसमें कहीं काँटे और कङ्कड़ का नाम नहीं, कहीं कहीं जङ्गली पेड़ों के साथ साथ फल-फूल के पेड़ दिखाई देते थे। कुछ दूर और आगे जाकर राजा ने देखा, कहीं कटे हुए नये धान का बोझ रक्खा है, कहीं गाय बछड़े चर रहे हैं। कहीं पेड़ के नीचे सुग्गे के गिराये पके फल पड़े हैं।

ऋषिगण स्नान करके जिस रास्ते से गये हैं, वह उनके वल्कल और जटा से गिरे हुए पानी से भीगा हुआ है। मृगगण रथ के शब्द से डर कर इधर उधर भागते हैं और बार बार पीछे की ओर घूम कर आँखें फाड़ रथ की ओर देखते हैं। होम का पवित्र धुआँ चारों ओर सुगन्ध फैला रहा है। दूर से मधुर साम-गान सुन पड़ता है। किसी के न कहने पर भी राजा और सारथि दोनों समझ गये कि उन्हों ने तपोवन में प्रवेश किया। देखा, मालिनी नदी कल-कल शब्द से कानों में मधु बरसाती हुई वह रही है। उसके दोनों किनारों पर मुनिगणों की तृणनिर्मित कुटियाँ शोभायमान हैं। नदी के तट में जो स्वाभाविक सुन्दर उपवन है, वसन्त ऋतु के आगम से उसकी अपूर्व शोभा चित्त को मोहित कर रही है। वसंत की हवा मालिनी के जल-स्पर्श से ठण्डी होकर वेले की सुगन्ध से सनी हुई धीरे धीरे वह रही है। उसके लगने से राजा का शरीर ठंडा हुआ। उनकी थकावट दूर हुई। उन्होंने सारथि से कहा—हम लोग तपोवन में आ गये। इस भेष से मुनि के आश्रम में जाना उचित नहीं। तुम मेरे अस्त्र-शस्त्र ले लो। घोड़े हिरन के पीछे बहुत दूर निकल आने से हैरान हो गये हैं। उन्हें कुछ देर सुस्ताने दो। मैं तपोवन के दर्शन से अपने को पवित्र कर आता हूं।

यह कह कर राजा धनुष-बाण और शिकारी लिवास सारथि के हाथ में दे आप अकेले तपोवन में प्रविष्ट हुए। साथ ही उनकी दक्षिण भुजा फड़क उठी। वे सोचने लगे—"शान्तिमय तपोवन में विवाहसूचक अङ्गस्फुरण का कारण क्या? फिर उनके मन में यह बात आई कि भवितव्य का द्वार सर्वत्र खुला रहता है।" वे मालिनी के किनारे किनारे जाने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें

रमणी का मधुर कण्ठस्वर सुन पड़ा। जैसे कोई कह रही हो, "सखी! इधर, इधर।" राजा ने कुतूहलाक्रान्त होकर उस ओर देखा—बराबर बराबर उम्र की तीन ऋषिकन्यायें घड़े को बग़ल में लिये फूल के पेड़ों को पानी से सींच रही हैं। वे केले का बकला पहने हैं। शरीर अलङ्कार-शून्य है, शृङ्गार का कोई चिह्न उनके अङ्ग में दिखाई नहीं देता। तो भी उनके अकृत्रिम रूप की ज्योति से सारा तपोवन विकसित हो रहा है। उनके प्रत्येक अङ्ग से मानो लावण्य टपक रहा है। देखकर राजा मुग्ध हुए। उन्होंने मन में सोचा, राज-भवन में भी ऐसा मनोहर रूप देखना दुर्लभ है। उद्यान की नवलता स्वाभाविक सौन्दर्य्य में आज अवश्य ही वनलता से पराजित हुई।

राजा जो पेड़ की ओट से उन ऋषिकन्याओं का दर्शन और उनकी परस्पर की बातचीत सुन रहे थे उसे वे ऋषि-कन्यायें न जानती थीं। इसलिए वे निःसङ्कोचभाव से पेड़ों को सींच रही थीं और परस्पर हास्य-विनोद की बातें कर रही थीं। तीनों ऋषि-कुमारियाँ अनुपम सुन्दरी थीं। किन्तु उन तीनों में जो कम उम्र की थी वह उन दो सखियों से भी सुन्दरता में बढ़ी थी। नये यौवन के समागम से उसकी स्वाभाविक शोभा तुरन्त के खिले हुए कमल की शोभा को भी लजा रही थी। राजा मुग्धनेत्र से उसके अङ्ग की अनुपम शोभा देखने लगे। वे उसका जो अङ्ग देखते थे वहीं उनकी दृष्टि अटक रहती थी। ऋषिकुमारियों की बातचीत और परस्पर के संबोधन से राजा समझ गये कि उनमें जो कम उम्र की है वही कण्व की कन्या शकुन्तला है। दूसरी दो उसकी सखियाँ हैं। उन दोनों में एक का नाम अनसूया और दूसरी का प्रियंवदा है।

ऋषिकुमारी जिस ढंग से परस्पर बातें कर रही थीं उससे राजा को विश्वास हुआ कि कठोर ब्रह्मचर्य्य से जीवन बिताना इन सबका उद्देश्य नहीं है। गृहस्थ-घर की लड़कियों की भाँति इन्होंने भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य ज्ञान लाभ किया है। स्वभावतः जितेन्द्रिय और धर्मशील होने पर भी शकुन्तला को देख कर राजा के हृदय में दृढ़ अनुराग उत्पन्न हुआ। किन्तु क्षत्रिय होकर ऋषिकुमारी के प्रति प्रेमाभिलाष उचित नहीं है इसलिए उन्होंने चित्त के वेग को रोकने की चेष्टा की। पर एकाएक उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि जब उस कुमारी को देखकर मेरा विशुद्ध हृदय उस ओर आकर्षित हुआ है तब वह अवश्य क्षत्रिय से विवाहिता होने का अधिकार रखती होगी।

ऋषिकुमारियाँ बड़ी निर्भयता के साथ रहस्य की बातें करती हुई पेड़ों में पानी सींच रही थीं। एकाएक उनके सम्मुख उपस्थित होते राजा को संकोच जान पड़ा। वे किस तरह उनके पास प्रकट हों, यह सुयोग ढूँढ़ने लगे। उसी समय एक भ्रमर, शकुन्तला जिस नवविकसित लता को सींच रही थी, उस पर से उड़ कर शकुन्तला के मुँह पर बैठने की चेष्टा करने लगा। वह डर गई और अनेक उपाय करने पर भी वह उसे न भगा सकी। वह जिधर जाती थी, भ्रमर भी उसी तरफ़ जाता था और उसके होंठ के पास बारबार मँड़राता था। वह वहाँ से भाग कर, बैठकर, खड़ी होकर और आँचल में मुँह छिपा कर, सब उपाय करके थक गई, पर भ्रमर उसका साथ न छोड़ता था। शकुन्तला घबरा गई, उसका मुँह सूख गया। अनसूया और प्रियंवदा खड़ी होकर चुपचाप यह अपूर्व कौतुक देखने लगीं। आख़िर

शकुन्तला अधीर होकर बोली—सखी! मैं सब यत्न करके थक गई, यह दुष्ट भौंरा मेरा साथ नहीं छोड़ता। अब तुम इससे मुझे बचाओ।

अनसूया और प्रियंवदा ने हँस कर कहा—यह तुम हमसे क्यों कहने लगीं। हम रक्षा करनेवाली कौन? तपोवन-वासियों की रक्षा का भार स्वयं राजा के ऊपर है। अगर तुम पर कोई संकट आ पड़ा है तो राजा दुष्यन्त का स्मरण करो। दुष्यन्त ने देखा, यही अच्छा अवसर है। वे तुरन्त पेड़ की आड़ से बाहर हो ऋषिकुमारियों के सामने उपस्थित हुए और बोले—पुरुवंशी के राजत्व-काल में किसका सामर्थ्य है कि सरलहृदया ऋषि-कुमारियों पर किसी तरह का अत्याचार करे?

ऋषिकुमारियाँ चौंक उठीं। दुष्यन्त का प्रभावशाली सुन्दर स्वरूप देखने और उनके एकाएक प्रकट होने से उन सब के आश्चर्य की सीमा न रही। वे उस अपरिचित व्यक्ति को सामने देख कर हक्का बक्का सी हो रहीं। पीछे उनमें अपेक्षाकृत अनसूया बड़ी थी, वह आगे बढ़ कर बोली—"आर्य! कोई ऐसी अनिष्ट घटना नहीं घटी है। हमारी यह सखी एक भ्रमर के द्वारा सताई जा रही थी। वह इसके मुँह पर बैठना चाहता था और यह भागी फिरती थी। हम दोनों अलग खड़ी होकर वही दृश्य देख रही थीं।"

इसके अनन्तर परस्पर कुशल-प्रश्न के बाद सबके सब एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गये। उन सबकी कथा-वार्ता से राजा को मालूम होगया कि शकुन्तला ब्राह्मण की बेटी नहीं है; क्षत्रिय की बेटी है। राजर्षि विश्वामित्र उसके पिता हैं। मेनका नाम की अप्सरा उसकी माता है। महर्षि कण्व ने उसे पाला-पोसा है।

इसी से लोग जानते हैं कि वह कण्व की ही बेटी है। दुष्यन्त ने ऋषिकन्याओं को अपना असली परिचय न दिया। उन्होंने अपने को एक राज-सम्बन्धी बताया। किन्तु उनके रङ्ग-रूप और बोलचाल से शकुन्तला और उनकी दोनों सखियाँ समझ गईं कि यही महाराज दुष्यन्त हैं। शकुन्तला के अनुपम रूप-लावण्य से राजा पहले ही मोहित हो चुके थे। उस समय बहुविवाह की प्रथा थी। अनेक विवाह करने पर भी लोग समाज में दूषित नहीं समझे जाते थे। इस पर भी राजा के कोई पुत्र न था। इसलिए शकुन्तला को क्षत्रिय की कन्या जान कर उसे पत्नी बनाने की उनको प्रबल इच्छा हुई। शकुन्तला भी राजा की कमनीय मूर्ति देख कर स्थिर न रह सकी। वह बचपन से ही सुनती थी कि योग्य वर मिल जाने से उसका व्याह कर देने में महर्षि को कोई आपत्ति न होगी। वे यह नहीं चाहते थे कि शकुन्तला जन्म भर कुमारी ही उनके आश्रम में रहे। रूप, गुण, कुल, शील और ऐश्वर्य्य में राजा दुष्यन्त से बढ़ कर योग्य वर कौन मिलेगा? इसलिए भोली-भाली शकुन्तला ने राजा को देखते ही मन ही मन उन्हें अपना हृदय दे दिया। बातों से मनोगत भाव प्रकट न करने पर भी उन दोनों के मन की अवस्था सखियों से छिपी न रही। प्रेम की भाषा न सुन पड़ने पर भी हृदय में उसकी प्रतिध्वनि पहुँच जाती है। इसलिए शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों ही दोनों के हृदय का भाव समझ गये। राजा व्यवहार-कुशल और गम्भीर थे, इसलिए उनके व्यवहार से कुछ विलक्षणता प्रकट न हुई। किन्तु शकुन्तला सरलस्वभावा थी, वह अपने मानसिक भाव के छिपाने में असमर्थ होकर सखियों की उपहास-पात्री बनी। राजा अनसूया और प्रियंवदा के साथ प्रेमालाप कर रहे थे, इसी समय तपोवन में एक

जङ्गली हाथी के आने की बात सुन कर सभी डर गईं और इच्छा न रहते भी अपने अपने आश्रम को चली गईं।

परस्परावलोकन से दुष्यन्त और शकुन्तला के हृदय में जो प्रेमाग्नि प्रज्वलित हुई थी, वह वर्द्धित होकर दिन दिन उन दोनों को दग्ध करने लगी। "राजा तपोवन में आये हैं," सुन कर ऋषियों ने यज्ञ के रक्षार्थ उन्हें कुछ दिन वहाँ रहने के हेतु अनुरोध किया। 'चलो, शकुन्तला के दर्शन की तो सुविधा होगी', यह सोच कर राजा ने उनके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। इससे दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों को बीच बीच में परस्पर देखने का सुयोग मिलने और दोनों के चित्त परस्पर दिन दिन प्रेम-सूत्र में दृढ़ रूप से बद्ध होने लगे। शकुन्तला योग्य वर से ब्याही जाय, यह अनसूया और शकुन्तला की एकान्त वासना थी। इसलिए उनको राजा और शकुन्तला के मन का भाव देख कर निश्चय हुआ कि इन दोनों का मिलन मणि काञ्चन के संयोग-सदृश सबको नेत्र-सुखद होगा। महर्षि कण्व उस समय आश्रम में न थे। कब आवेंगे, इसका भी कुछ निश्चय न था। इसलिए राजा ने उनके परोक्ष में शकुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करने का संकल्प किया। गुरुजन की आज्ञा की कुछ अपेक्षा न रख प्राप्तवयस्क परस्पर अनुरक्त कन्या-वर के ब्याह का नाम गान्धर्व-विवाह है। यह सर्वजनानुमोदित न होने पर भी उस समय के क्षत्रिय-समाज में प्रचलित था। इसलिए राजा और शकुन्तला इन दोनों में किसी ने इस तरह के विवाह में कुछ संकोच न किया। शकुन्तला सब प्रकार अपने योग्य वर को आत्मसमर्पण कर रही है, यह सोच कर अनसूया और प्रियंवदा ने इस विवाह में प्रसन्नता प्रकट की।

उन दोनों सखियों की सहायता से दुष्यन्त शकुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करके कृतार्थ हुए ।

कई दिन तपोवन में रह कर दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट गये । महर्षि कण्व को बिना जताये, उनके परोक्ष में शकुन्तला को तपोवन से ले जाना उचित नहीं—यह सोच कर या किसी और ही कारण से, दुष्यन्त शकुन्तला को तपोवन में छोड़ गये । पर यह प्रतिज्ञा कर गये कि शीघ्र ही उसे अपनी राजधानी में ले जायँगे।

स्वामी के चले जाने पर पतिप्राणा शकुन्तला को पति के भिन्न और कोई चिन्ता न रही । वह आश्रम के सब कर्तव्यों को भूल कर दिन रात केवल दुष्यन्त की चिन्ता ही से समय बिताने लगी । कण्व मुनि उसके ऊपर अतिथिसत्कार का भार देकर गये थे । स्वामी की चिन्ता में निमग्न रहने के कारण शकुन्तला ने इस कार्य में भूल की ।

एक दिन दुर्वासा मुनि अतिथि रूप में आश्रम में आकर उच्च स्वर से बोले—"कोई है ? मैं अतिथि हूँ ।" शकुन्तला दुष्यन्त की चिन्ता में ऐसी निमग्न थी कि उसने ब्रह्मर्षि दुर्वासा का पुकारना नहीं सुना । मुनिवर क्रोध से उसे शाप देकर बोले—"तू ने जिसकी चिन्ता में डूब कर मेरा अपमान किया है, जा, वह तुझे एक-दम भूल जायगा । जैसे पागल आदमी पूर्व का किया काम भूल जाता है, वैसे ही स्मरण करा देने पर भी तेरा प्रेमी तुझे न पहचानेगा ।" शकुन्तला इस प्रकार बाह्य ज्ञान-शून्य थी कि दुर्वासा का कठोर शाप भी उसके कान में न पड़ा । किन्तु अनसूया और प्रियंवदा यह शाप दूर से सुन कर दौड़ कर आईं और उनके पैरों पर गिर कर शकुन्तला का अपराध क्षमा करने के लिए कोमल वाणी से प्रार्थना करने लगीं । किन्तु क्रोधशील दुर्वासा किसी तरह क्षमा करने को

राज़ी न हुए। पश्चात् उन दोनों ऋषिकुमारियों के अनेक अनुनय-विनय करने पर बोले—"कोई स्मारक चिह्न जब तक राजा न देखेगा तब तक शकुन्तला का स्मरण उसे न होगा। स्मारक चिह्न देखते ही शकुन्तला की सब बातें उसे स्मरण हो आवेंगी।" यह सुन कर दोनों सखियों को धैर्य हुआ।

राजा विदा होते समय शकुन्तला को अपनी नामाङ्कित अँगूठी दे गये थे। अनसूया और प्रियंवदा ने सोचा, यदि राजा नहीं पहचानेंगे तो शकुन्तला वही अँगूठी उन्हें देखने को देगी। उससे राजा को तुरन्त उसका स्मरण हो आवेगा। इसलिए अब घबराने की कोई बात नहीं। शकुन्तला एक तो पति के विरह से व्याकुल है, उस पर यह वृत्तान्त सुनने से उसे मर्मान्तिक कष्ट होगा। यह सोच कर उन्होंने इस विषय में शकुन्तला से कुछ न कहा।

कुछ समय के अनन्तर महर्षि कण्व ने तीर्थ से आकर दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के विवाह होने की बात सुनी। उनकी आज्ञा की कुछ अपेक्षा न कर शकुन्तला ने जो सर्वथा योग्य वर को स्वीकार किया, इससे उन्हें कुछ खेद न होकर हर्ष ही हुआ। उन्होंने राजा के सहवास से शकुन्तला को गर्भवती देख कर उसे पति के घर भेज देना उचित समझा। निश्चय हुआ कि महर्षि कण्व की बहन गौतमी और उनके शार्ङ्गरव तथा शारद्वत नामक दो शिष्य उसे साथ ले जाकर हस्तिनापुर में राजा के पास पहुँचा आवेंगे। उन सबों के जाने का एक दिन नियत हुआ।

जो शकुन्तला इतने दिन तपोवन का प्राणस्वरूप हो रही थी, जिसने अपने रूपलावण्य से इतने दिन तपोवन को विभूषित कर रक्खा था, वह अब सदा के लिए तपोवन से बिदा होती है।

अहा ! यह दृश्य कैसा करुणोत्पादक है ! कैसा मर्मभेदी है ! तपोवन के जितने स्थावर जंगम जीव थे, सभी शकुन्तला के वियोग-भय से कातर हुए। महर्षि स्वभावतः धीर, गम्भीर और ज्ञानी थे, किन्तु शकुन्तला की जुदाई का स्मरण करके वे भी अधीर हो उठे। खूब तड़के स्नानादि क्रिया समाप्त करके वे शकुन्तला को विदा कर देने के हेतु उद्यत हुए। शकुन्तला जाती है, यह देख उनकी आँखों में आँसू भर आये। गला रुँध गया। उन्होंने सोचा, "मैं जन्म ही का वनवासी हूँ, कन्या को विदा करते समय मेरा हृदय इतना व्याकुल हो रहा है, तब न मालूम गृहस्थ व्यक्तियों का हृदय कितना व्याकुल होता होगा।" वहाँ जितनी ऋषिपत्नियाँ थीं शकुन्तला को विदा करने के लिए सब उसके पास आईं। एक एक कर सब उसे छाती से लगाने और आशीर्वाद देने लगीं। किसी ने कहा—"जाओ, तुम स्वामी की सदा सुहागिन हो।" कोई बोली—"तुम्हारे वीर पुत्र उत्पन्न हो।" किसी ने कहा—"तुम पार्वती के समान पतिव्रता हो।" इसी तरह सब आशीर्वाद देने लगीं। अनसूया और प्रियंवदा ने फूल-पत्तों के आभूषण से शकुन्तला को विभूषित किया। वह साक्षात् वनदेवी की भाँति शोभा पाने लगी। इन दोनों सखियों के मन का भाव बखाना नहीं जा सकता। वे दोनों छाया की तरह इतने दिन शकुन्तला के साथ फिरा करती थीं। शकुन्तला के सुख से अपने को सुखी और उसके दुःख से अपने को दुखी मानती थीं। वही शकुन्तला अब सदा के लिए उनसे बिछुरती है। यही सोच कर उन दोनों की देह से मानो जान निकल गई। जब उसके जाने का सब सामान ठीक हो गया तब शकुन्तला ने महर्षि को प्रणाम किया। महर्षि

ने गद्गद् कण्ठ से कहा—"बेटी! शर्म्मिष्ठा जैसी ययाति की प्रियतमा हुई, तुम भी वैसी ही पति की प्रियतमा हो, और पुरु के जैसा प्रतापी पुत्र उत्पन्न करो।"

सुन कर गौतमी ने कहा—"शकुन्तला केवल इसे आशीर्वाद ही करके न समझे, यह उसके लिए वरदान हुआ।"

महर्षि ने तपोवन के वृक्ष और लताओं को पुकार कर कहा—"हे आश्रम के तरुलतागण! जो शकुन्तला बिना तुम सबों को पानी दिये स्वयं पानी न पीती थी, स्वभावतः अलङ्कार की अनुरागिणी होकर भी जो पश्चात् तुम्हें क्लेश न हो इस भय से कभी तुम्हारे नवपल्लव न तोड़ सकती थी; तुम्हारे प्रथम फूल की कली निकलते देख जिसे पूर्ण आनन्द होता था, वह शकुन्तला आज अपने पति के घर जाती है। तुम सब इसे जाने की आज्ञा दो।"

गौतमी ने शकुन्तला से कहा—बेटी! वनदेवतागण तुम्हारा कुशल मना रहे हैं। तुम उन्हें प्रणाम करो।

शकुन्तला ने उन्हें प्रणाम करके प्रियंवदा से कहा—सखी! महाराज को देखने के लिए मेरा चित्त व्याकुल होने पर भी तपोवन छोड़ कर जाने के लिए पैर नहीं उठता।

प्रियंवदा—सखी! तपोवन छोड़ कर जाने में केवल तुम्हीं को क्लेश होता हो, यह नहीं। एक बार तपोवन की ओर भी देखो, पक्षिगण आज चारा नहीं चुगते, सभी चुपचाप पेड़ पर बैठे हैं। हरिणों के मुँह से हरी घास गिरी जा रही है। वे मुँह ऊपर उठाते तुम्हारी ओर देख रहे हैं। मयूर ने नाचना छोड़ दिया है। लताओं के पुराने पत्ते क्या गिर रहे हैं मानो उनकी आँखों से आँसू टपक रहे हैं। तुम्हारी विरह-वेदना से आज सभी शोकाकुल हैं।

शकुन्तला एक लता की ओर देख कर बोली—पिता ! मैं एक बार अपनी प्यारी बहन माधवी लता से मिल आती हूँ ।

कण्व—मिल आओ । बेटी ! तुम्हारा जो माधवी लता पर बहन का सा अनुराग है वह मैं जानता हूँ ।

शकुन्तला लता के समीप जाकर बोली—माधवी ! यद्यपि तुम रसाल के साथ सुख से लिपट रही हो, तो भी अपनी शाखारूपी बाँह से एक बार मेरा आलिङ्गन करो । मैं चिर दिन के लिए तुमसे अलग होती हूँ

कण्व—बेटी ! मैंने तुम्हें योग्य वर के हाथ देने की बात पहले ही से सोच रक्खी थी । दैवयोग से मेरा वह अभिलाष पूरा हुआ । जैसे यह नई लतिका आप से आप रसाल को पा गई है, वैसे ही तुम भी अपने योग्य पति को पाकर कृतार्थ हुई । तुम दोनों के विवाह-सम्बन्ध से मैं अब निश्चिन्त हुआ । अनायास ही ईश्वर ने मेरा मनोरथ पूरा किया ।

शकुन्तला ने अनसूया और प्रियंवदा से कहा—सखियो ! माधवी को तुम्हारे हाथ सौंपे जाती हूँ ।

कण्व—अनसूया ! प्रियंवदा ! रोओ मत । तुम्हीं जब रोओगी तब शकुन्तला को कौन समझावेगा ?

एक आसन्नप्रसवा हरिणी पास में खड़ी थी । उसको लक्ष्य करके शकुन्तला ने महर्षि से कहा—पिता ! जब इस गर्भिणी मृगी के बच्चा हो तब यह शुभ संवाद मेरे पास कहला भेजिएगा ।

कण्व—बेटी ! अवश्य ही कहला भेजूँगा ।

इसी समय पीछे से किसी ने शकुन्तला का कपड़ा खींचा । वह बोली—अयँ ! कौन मेरा कपड़ा खींचता है ?

कण्व—जिसे तुमने दूध, चावल और कोमल तृण खिला कर

बड़ा किया, जिसके मुँह में कुश काँटे लगने से तुम अपने हाथ से उसे पोंछती और तेल लगाती थीं, वही तुम्हारा पुत्र स्थानीय मृग-शावक तुम्हारे वस्त्र को मुँह से पकड़े खड़ा है।

शकुन्तला ने मृगछौने को देख कर कहा—तुम्हें मातृहीन देख कर मैंने इतने दिन तुम्हारा पालन किया। अब पिताजी तुम्हारी रक्षा करेंगे।

कण्व—बेटी! तुम्हारी आँखों में आँसू उमड़ आये। रोना बन्द कर सावधानी से चलो। नहीं तो इस ऊँची नीची भूमि में तुम्हारे पैर फिसल जायँगे।

सामान्यतः मनुष्य मनुष्य ही को प्यार करता है। किन्तु लता को बहन और मृगशावक को पुत्र की तरह कौन प्यार करता है? हरिणी ब्याई या नहीं, ब्याई तो उसके कौन बच्चा हुआ, यह जानने के लिए कितने लोगों का जी लगा रहता है? अपने को प्रकृति के साथ इस प्रकार मेल-मिलाप रखने की शक्ति कितने मनुष्यों में पाई जाती है? शकुन्तला में यह शक्ति थी। जान पड़ता है, इसीसे वह वनवासिनी होकर भी महाराज दुष्यन्त की हृदयेश्वरी हुई।

बात पर बात छिड़ जाने से शकुन्तला के जाने में विलम्ब हो रहा था। यह देखकर मुनि के शिष्य शार्ङ्गरव ने कहा—गुरुदेव! अब बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। आपको जो कुछ कहना हो, कह कर इस सरोवर के तट से अपने आश्रम को लौट जायँ।

कण्व—तुम दुष्यन्त से कहना—शकुन्तला ने किसी की अपेक्षा न करके उनके हाथ अपने को सौंप दिया। उन्होंने जैसे उच्च वंश में जन्म लिया है, इसके साथ वैसा ही अच्छा व्यवहार करेंगे। इसके प्रति उदासीनता दिखलाने से हम यद्यपि संयतात्मा

हैं तो भी हमारा हृदय दुखी होगा, इसका वे स्मरण रक्खेंगे। शकुन्तला के सम्बन्ध में उनसे हमारी यही प्रार्थना है। इसके बाद जो इसके भाग्य में लिखा होगा वह होगा। उसके सम्बन्ध में हमारा कुछ कहना नहीं है।

शार्ङ्गरव से यह कह कर कण्व ने शकुन्तला से कहा—बेटी! तुम से भी कई एक बातें कहनी हैं। उन्हें स्मरण रखना। तुम ससुराल जा रही हो। वहाँ जाकर गुरुजनों की सेवा करना, सौत के साथ प्रियसखी की तरह व्यवहार करना। स्वामी कुछ अप्रिय व्यवहार भी करें तो भी उनके साथ कभी प्रतिकूल आचरण नहीं करना। आश्रित जनों पर दया रखना। कभी सौभाग्य का गर्व न करना। जो स्त्रियाँ इस व्यवस्था के अनुसार चलती हैं वही यथार्थ में गृहिणी-पद वाच्य हैं। जो इसके विरुद्ध आचरण करती हैं, वे वंश की रोग हैं। उनके द्वारा वंश की मर्यादा लुप्त हो जाती है।

यह कह कर फिर उन्होंने कहा—"अब मैं बहुत दूर न जाऊँगा। तुम अपनी सखियों से मिलकर अब यहाँ से प्रस्थान करो।" शकुन्तला रोते रोते पिता को प्रणाम करके बोली—क्या अनसूया और प्रियंवदा भी यहीं से लौट जायँगी?

कण्व—हाँ बेटी। ये दोनों भी व्याहने योग्य हुईं। इसलिए तुम्हारे साथ इनका राजसभा में जाना उचित नहीं। गौतमी तुम्हारे साथ जायगी।

शकुन्तला—आओ सखी! तुम दोनों एक साथ मुझे गले लगाओ।

उन दोनों (अनसूया और प्रियंबदा) ने आँसू बरसाती हुई शकुन्तला को गले से लगाया और दूसरा कोई न सुने ऐसे धीमे स्वर में शकुन्तला से कहा—सखी। यदि किसी कारण से राजा

तुमको न पहचान सकें तो तुम उन्हें उनकी नामाङ्कित अँगूठी दिखलाना।

शकुन्तला—सखी। तुमने ऐसी बात क्यों कही? सुनकर भय से मेरा हृदय काँपता है।

सखियों ने कहा—डरने की कोई बात नहीं। स्नेह की गति विचित्र है। दूसरे राजा की चित्तवृत्ति कौन जाने किस घड़ी कैसी रहे; इसलिए तुमसे यह बात जता दी।

शकुन्तला ने पिता से पूछा—मैं इस तपोवन में फिर कब आऊँगी?

कण्व—बेटी! योग्य पुत्र के हाथ में राज्य और कुटुम्बवर्ग का भार देकर जब तीसरेपन में स्वामी के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करोगी तब फिर इस आश्रम में आओगी।

यों ही बातचीत करते दिन पहर से ऊपर आ गया। शकुन्तला एक एक कर फिर सबसे मिली और आँसूभरी आँखों से गौतमी के पीछे पीछे हस्तिनापुर की ओर चली। कण्व मुनि भी अनसूया और प्रियंवदा को साथ ले उदास मन से आश्रम को लौट आये। थातीवाले को थाती देकर जैसे लोग निश्चिन्त होते हैं वैसे ही शकुन्तला को पति के घर भेज कर कण्व मुनि स्वस्थ हुए।

शकुन्तला दुष्यन्त के दर्शन को चली है, किन्तु दुष्यन्त को क्या उसका स्मरण है? वे तपोवन से बिदा होकर जब राजधानी को आये थे तब शकुन्तला की चिन्ता उनके चित्त में छाई थी। परन्तु पहाड़ का शिखर गिरकर जैसे गिरिनिःसृत नदी की गति रोक देता है, दुर्वासा के शाप ने भी वैसे ही विशाल पाषाण का आकार धारण कर शकुन्तला के सम्बन्ध में जो उनका अनुराग-स्रोत था, उसकी गति को रोक दिया। दुष्यन्त शकुन्तला के

सम्बन्ध की सब बातें भूल गये। शकुन्तला के प्रति पूर्वानुराग की बात तो दूर रही, उन्हें शकुन्तला के देखने तक की सुधि न रही। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन वे राजकाज से छुट्टी पाकर आराम कर रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी को यह गीत गाते सुना—

क्यों गये तुम भूल मुझको सो ज़रा हमसे कहो।
क्या यही है न्याय! जो मुझसे अलग होकर रहो॥
पाप-पङ्कज की कली उस पर रहे तुम भूल कर।
है मुनासिब क्या यही, बैठे भले हो फूल कर॥
थी रसाल की मञ्जरी जब रसभरी सौरभ-सनी।
तब न होते थे जुदा करने लगे अब शठपनी॥

रानी हंसपदिका अपने मन से यह गीत गा रही थी। किन्तु यह सुन कर राजा एक-दम व्यग्र उठे। उनके चित्त की गति विचित्र हो गई। उन्हें जान पड़ा, जैसे उनकी कोई अनूठी चीज़ खो गई, जो अमूल्य रत्न उनके पास था, वह अब नहीं है। बहुत सोचने पर भी वे कुछ न समझ सके। किन्तु एक विषादपूर्ण भाव उनके मन में उत्पन्न हुआ।

राजा मन ही मन इस विषाद का कारण ढूँढ़ रहे थे। इसी समय द्वारपाल ने आकर इत्तिला दी—"महाराज! हिमालय पहाड़ के निकटवर्ती काश्यप मुनि के आश्रम से कई एक मुनि मुनिपत्नियों के साथ श्रीमान् से मिलने को आये हैं।" काश्यप का नाम सुनते ही राजा ने बड़े ही उत्सुक हो उन्हें भीतर ले आने की आज्ञा दी और उनके स्वागत के लिए पुरोहित को संवाद भेज आप अग्निहोत्रालय में गये। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि काश्यप के आश्रम से आये हुए ऋषि और ऋषि-

पत्नी और कोई नहीं, वही महर्षि कण्व के शिष्य शार्ङ्गरव और शारद्वत थे। उनके साथ गौतमी और शकुन्तला थी। अनेक कठिन मार्गों का अतिक्रम कर वे हस्तिनापुर आये थे। शकुन्तला अपनी चिरसञ्चित तपस्या के फलस्वरूप पति को देखने आई थी। नहीं कह सकते, उसके मन में भावी सुख के कितने चित्र अङ्कित थे। किन्तु विधाता की इच्छा को कौन जान सकता है? शकुन्तला को जिस बात का अनुमान कभी स्वप्न में भी न हुआ था वही हुआ।

शार्ङ्गरव और शारद्वत इसके पूर्व कभी शहर में न आये थे। इसलिए उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही। चारों ओर लोगों की भीड़-भाड़ और कोलाहल। चारों ओर भाँति भाँति की विलास-सामग्री! शान्तिमय तपोवन से इस मनुष्यकोलाहल-पूर्ण राजभवन में आकर उन्हें जान पड़ा जैसे वे धधकते हुए अग्नि-कुंड में गिर पड़े हों। उनका जी घबरा उठा। राजा ने सिंहासन से उतर कर विनयपूर्वक उन सबों का आतिथ्यसत्कार किया। उनकी निष्कपट भक्ति देख कर वे सब बड़े सन्तुष्ट हुए। शकुन्तला सबके पीछे लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी थी। घूँघट के भीतर से उसकी अनुपम सुन्दरता ने राजा की दृष्टि को आकर्षित किया। किन्तु अविवाहिता शकुन्तला को देख कर उनके हृदय में पहले जिस भाव का उदय हुआ था, इस समय विवाहिता शकुन्तला को देख कर उस भाव का लेश-मात्र भी उदय न हुआ। ऋषिगणों के इस तरह उनके पास आने का कारण क्या, वे केवल इसी बात को सोचने लगे। उन्होंने उन सबों को आदर-पूर्वक बिठा कर उनके आने का कारण पूछा।

शार्ङ्गरव ने कहा—महाराज! महर्षि कण्व ने आपको आशीर्वाद देकर कहा है—आप जैसे गुणवान् हैं, शकुन्तला भी वैसी ही गुणवती है। रसाल के साथ माधवी के मिलन की भाँति आप दोनों का सम्मिलन भी अभिनन्दनीय है। इसलिए पहले उनसे अनुमति न लेने पर भी वे आप दोनों के गान्धर्व-विवाह से प्रसन्न हुए हैं। शकुन्तला आपकी यथासमय सेवा कर गर्भिणी हुई। अब आप इसको ग्रहण कर सुखपूर्वक इसके साथ धर्माचरण करें।

दुर्वासा के शाप से शकुन्तला के सम्बन्ध की कोई बात राजा को याद न थी। उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"क्या कहा! मैंने इस ऋषिकन्या के साथ ब्याह किया है?"

जो कार्य समाज में अप्रचलित है, धर्मविरुद्ध न होने पर भी, उसके करने से लोग पग पग में भय खाते हैं। उन्हें सदा डर कर चलना पड़ता है। इसलिए गान्धर्वविवाह की रीति से विवाहिता होने पर भी शकुन्तला शङ्कित-चित्त से राजा के पास आई थी। पहले ही से उसकी छाती धड़क रही थी। इस समय राजा का उत्तर सुनकर मानो उसके सिर पर वज्र गिरा। वह इतने दिन से जो सुख-स्वप्न देख रही थी, वह यथार्थ में स्वप्न ही हुआ। वह कुछ न बोल सकी। गौतमी ने समझा, शायद राजा ने शकुन्तला का मुँह नहीं देखा, इसी से उसे नहीं पहचान सके। उसने शकुन्तला से कहा—बच्ची! लजाओ मत। यहाँ आओ, मैं तुम्हारे मुँह पर से घूँघट हटा देती हूँ। इससे राजा तुम्हें पहचान सकेंगे।

यह कह कर गौतमी ने शकुन्तला का घूँघट ऊपर को उठा दिया। मेघ का आवरण हटने से जैसे पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना से

सारा संसार प्रकाशमान होता है, वैसे ही शकुन्तला के पवित्र मुख की ज्योति से सभागृह उज्ज्वल हुआ। सौन्दर्य देख कर किसका मन प्रसन्न नहीं होता? किसका मन मुग्ध नहीं होता? शकुन्तला के मुँह की अनुपम शोभा देख कर राजा ने मन में सोचा, "संसार में इस मुँह की समता नहीं हो सकती। मानव-जाति की बात जाने दो, चित्र में भी ऐसी सुन्दरता नहीं देखी जाती।" यह भुवनमोहिनी सुन्दरता याचक रूप से उनके पास खड़ी है। महाराज दुष्यन्त अतुल प्रतापी, विश्वविदित, चक्रवर्ती, नृपचक्र-चूड़ामणि थे। यदि वे इस स्वतःसम्प्राप्त शोभाराशि शकुन्तला को उपभोग के लिए रख लेते तो उन्हें कौन बुरा कहता? किन्तु वे धर्मभीरु थे। अधर्म से डरते थे। उन्होंने कहा—मैंने कभी इनको देखा है, यह भी स्मरण नहीं होता, ब्याह करना तो दूर की बात है।

मर्माहत गौतमी, शार्ङ्गरव और शारद्वत ने राजा को अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की। उन सबों को सन्देह हुआ कि राजा ने शकुन्तला के रूप से मोहित होकर गुप्त रीति से उसके साथ गान्धर्व-विवाह किया था। अब लोकलज्जा से उसका ग्रहण करने में संकुचित होते हैं। इसलिए वे सब राजा की इस अकर्तव्यता पर दो एक कटु-वाक्य कहने में न चूके। राजा अपने को निर्दोषी जानते थे, इसलिए ऋषिजनों के प्रति स्वाभाविक भक्ति रहते भी उन्होंने उनकी बात का जवाब देने में कुछ संकोच न किया। जब वे लोग राजा को किसी तरह नहीं समझा सके तब शारद्वत ने खिसिया कर शकुन्तला से कहा—हम लोगों को इनसे जो कुछ कहना था, कहा, अब तुम्हें कुछ कहना हो तो कहो।

शकुन्तला क्या कहती। वह बेचारी कोमल-हृदया, सांसारिक

विषय से अनभिज्ञ बालिका इतने दिन वन के वृक्षों और लताओं तथा पशुपक्षियों को प्यार करके और उनसे प्रेम का बदला पाकर शान्ति-पूर्वक सुख से समय बिताती थी। प्रेम के भीतर भी जो इतना अविश्वास और सन्देह छिपा रहता है, प्रेम करके भी जो पीछे इस प्रकार अपमानित होना पड़ता है, यह शकुन्तला नहीं जानती थी। शकुन्तला क्या कहती? किन्तु स्वभावतः लज्जाशीला होने पर उसके लिए वह लज्जा करने का समय न था। स्त्री का सर्वस्व धन भी सतीत्व है। शकुन्तला के उसी सतीत्वसम्बन्ध में सन्देह आ पड़ा था। इसलिए अपनी मर्यादा के रक्षार्थ शकुन्तला को लज्जा त्याग कर दो चार बातें बोलनी ही पड़ीं। शकुन्तला ने पहले दुष्यन्त को "आर्यपुत्र" कह कर पुकारा, परन्तु तुरन्त ही उसके मन में हुआ, जब विवाह में ही सन्देह है तब यह सम्बोधन क्यों? उसने कहा—"पौरव", तपोवन में वैसा अनुराग दिखलाने, और धर्म को साक्षी करके विवाह करने के बाद अब इस तरह नज़र बदलना क्या उचित है?

राजा—"बरसात की नदी किनारे को तोड़ कर आप मलिन होती है और तटस्थ वृक्ष को भी गिराती है। देखता हूँ, वैसे ही तुम आप बदनाम होकर, अब मुझे भी बदनाम करना चाहती हो।" हा! कैसा कठोर! कैसा हृदय-भेदी वाक्य है! शकुन्तला का कलेजा फट गया। तो भी वह धीरज धर के बोली—महाराज! यदि आपको यथार्थ ही विवाह में सन्देह हो तो मैं आपको कोई स्मारक चिह्न दिखलाती हूँ, तब तो आपको विश्वास होगा?

राजा—अच्छा, क्या स्मारक है, दिखाओ।

शकुन्तला ने बड़ी उतावली से आँचल को खोल कर देखा।

अनसूया और प्रियंवदा की बात सुनने के पीछे उसने राजा की दी हुई अँगूठी को बड़े यत्न से आँचल में बाँध रक्खा था। वह क्या हुई! वह बड़ी घबराहट के साथ गौतमी का मुँह देखने लगी।

गौतमी ने कहा—बेटी! आते समय मार्ग में तुमने शची-तीर्थ में स्नान किया था। कदाचित् उसी समय वह पानी में गिर गई।

गौतमी का सन्देह असम्भव नहीं है। यह शकुन्तला और उसके साथी दोनों ऋषिकुमारों ने जाना। किन्तु राजनीति के कौटिल्य से परिचित राजा दुष्यन्त ने इसे केवल कपट-मात्र समझा। उन्होंने हँस कर कहा—स्त्री-जाति जो स्वभावतः बात बनाने में कुशला होती है, उसका यह एक अच्छा उदाहरण है।

मर्माहत शकुन्तला ने कहा—महाराज! मैं दैवदोष से स्मारक चिह्न न दिखा सकी। किन्तु मैं ऐसी बात कहती हूँ जो सुनते ही आपको पूर्व का वृत्तान्त स्मरण होगा।

राजा—क्या कहती हो? मैं सुनने के लिए तैयार हूँ।

शकुन्तला—आपको याद होगा। एक दिन हम आप नव-मालिका-मण्डप में बैठे थे। आपके हाथ में पुरैन के पत्ते के दोने में पानी था। मेरा पालित एक हिरन का बच्चा मुझे देख वहाँ आया। आपने उसे पानी पीने का इशारा किया, परन्तु वह आपको अपरिचित जान कर आपके पास न गया। वही दोना लेकर जब मैंने उसे बुलाया वह तुरन्त मेरे पास आया और पानी पीने लगा। तब आपने व्यङ्ग करके कहा—सब कोई अपनी ही जाति पर विश्वास करता है। तुम दोनों वनवासी हो। इसी से तुम दोनों की इतनी परस्पर सहानुभूति है।

राजा—ऐसे ही बनावटी मीठी बातों से स्त्रियाँ पुरुष का मन मोहित करती हैं।

गौतमी—महाराज! आप ऐसी बात न कहें। जो जन्म ही से तपोवन में पली है, वह कपट-व्यवहार की शिक्षा कहाँ पावेगी? कपट करना क्या कभी उसके लिए सम्भव है?

राजा—तपस्विनीजी! नगर हो, या तपोवन, कपट-व्यवहार स्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है। वह किसी से सीखना नहीं पड़ता। कोयल को दूसरे पक्षी के घोंसले में अपने बच्चों का पालन कराना कौन सिखलाता है?

शकुन्तला इतनी देर कलेजे पर पत्थर रख दुष्यन्त की सब बातें सहे जाती थी। अब वह सह न सकी। एक तो बिना अपराध के अग्राह्य होना, उस पर यह मर्मच्छेदी व्यङ्ग वचन उसे सह्य न हुआ। सती स्त्री अपनी मर्यादा के आगे भय, भक्ति और लज्जा का भाव स्थिर न रख सकी। शकुन्तला ने रुष्ट होकर दुष्यन्त से कहा—"आप अपने ही हृदय जैसा सबको समझते हैं"? इससे अधिक वह और कुछ न बोल सकी। ग्लानि और रोष से उसका कण्ठ रुक गया। राजा ने उसका भाव देख कर मन में सोचा—इसका क्रोध तो बनावटी नहीं जान पड़ता। किन्तु मैं अपने मन की प्रतीति कैसे न करूँ? मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं होता।

इस विषय में अधिक वादानुवाद करना निरर्थक जान शारद्वत ने दुष्यन्त से कहा—महाराज! यह आपकी पत्नी है। पत्नी के ऊपर पति का सब अधिकार है। चाहे आप इसका त्याग कीजिए; चाहे अपने पास रखिए, जो आपकी इच्छा हो कीजिए, हम सब जाते हैं।

यह कह कर वे सब जाने को उद्यत हुए। यह देख शकुन्तला भी रोते रोते उन सबों के पीछे चली।

उसको साथ आते देख गौतमी ने शार्ङ्गरव से कहा—यह देखो, शकुन्तला रोती रोती हम सबों के साथ आ रही है। उसका दोष ही क्या है? स्वामी ने उसके साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार किया! वह किसके पास रहेगी?

शार्ङ्गरव ने शकुन्तला को आते देख डाँट कर कहा—क्या तुम स्वेच्छाचारिणी होना चाहती हो?

शकुन्तला भय से काँपने लगी। उसकी यह दशा देख राजा ने ऋषिकुमार से कहा—आप इन्हें क्यों वृथा प्रलोभन दे रहे हैं? जब मैंने इनके साथ ब्याह नहीं किया तब मेरे यहाँ इनका रहना उचित नहीं।

राजपुरोहित वहाँ थे। उन्होंने कहा—महाराज! मैं आपसे एक निवेदन करता हूँ। ऋषिकन्या गर्भवती हैं। ज्योतिषियों ने कहा है कि आपके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती होंगे। यदि इनके गर्भ से उत्पन्न बालक में चक्रवर्ती का लक्षण देख पड़ेगा तो ये आपकी विवाहिता हैं, इस विषय में सन्देह न रहेगा। और यह न हो तो ये सर्वथा आपके द्वारा परित्यक्त होंगी। आपकी आज्ञा हो तो प्रसवकाल तक ये मेरे घर में रहें।

राजा—अच्छी बात है। आप इन्हें अपने घर ले जाइए, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।

राजपुरोहित शकुन्तला को साथ ले अपने घर की ओर विदा हुए। इधर शार्ङ्गरव और शारद्वत ने गौतमी को आगे करके तपोवन की यात्रा की। कुछ ही देर में पुरोहित ने लौट कर राजा

से कहा—महाराज! आश्चर्य! बड़ा ही आश्चर्य! ऐसी अद्भुत घटना कभी आज तक न देखी थी।

राजा—क्या! कैसी घटना?

पुरोहित—मैं शकुन्तला को साथ लिये घर जा रहा था। वह अपने भाग्य को बार बार धिक्कार देकर रो रही थी। अप्सरा-तीर्थ के पास होकर जाते समय अचानक एक ज्योतिर्मयी स्त्री उसे गोद में उठा कर आकाशमार्ग से ले गई। मेरी इतनी बड़ी उम्र हुई पर ऐसी घटना कभी न देखी।

शकुन्तला के सम्बन्ध की सभी बातें राजा को आश्चर्य से भरी जान पड़ीं। उन्होंने कहा—"जो होने को थी हुई, अब उस बात को लेकर तर्क-वितर्क करने की क्या आवश्यकता? आप अपने घर जाइए।" यह कह कर उन्होंने पुरोहित को विदा किया और आप अपने मन का विषाद दूर करने की इच्छा से विश्रामभवन में गये।

यों ही दिन पर दिन बीतने लगा। राजा ने राजकार्य में उलझ कर शकुन्तला के सम्बन्ध की सब बातों को मन से भुला दिया। एक दिन शहर के कोतवाल ने एक अँगूठी लाकर राजा को दिखलाई और उनसे कहा—"महाराज! एक धीवर जौहरी के पास यह अँगूठी बेचने को लाया था। वह कहता है, शची-तीर्थ में उसने एक रोहू मछली पकड़ी थी। उसी के पेट में यह अँगूठी उसे मिली। किन्तु इस अँगूठी में महाराज का नाम खुदा है, देख कर चौकीदार उसे चोरी की चीज़ जान कर धीवर को पकड़ लाया है। अब महाराज की जो आज्ञा हो।

अँगूठी देखते ही दुष्यन्त के सिर से पैर तक मानो बिजली दौड़ गई। एक साथ शकुन्तला के सम्बन्ध की सब बातें उन्हें

स्मरण हो आई। उनकी आँखों के आगे वह मालिनी-तीरवर्ती तपोवन, वह सखियों के साथ शकुन्तला का फूलों के पेड़ में पानी सींचना, वह लताकुञ्ज में शकुन्तला से भेंट होना, वह आँसू भरे नेत्रों से परस्पर एक दूसरे से विदा माँगना, वह प्रेमालिङ्गन-पूर्वक अँगूठी देना, और अन्त में उसे अपरिचित कह कर स्वीकार न करना आदि सब घटनायें एक साथ उनकी आँखों के सामने नाचने लगीं। वे अचेत हो पड़े, पर तो भी अपने मन का भाव छिपाकर बोले—कोतवाल! यह अँगूठी मेरी है। दैवयोग से जो चीज़ खो गई थी मिल गई। धीवर निर्दोष है, उसे इनाम देकर विदा कर दो।

कोतवाल—"जो आज्ञा" कह कर बाहर गया। यही धरती स्वर्ग है और यही नरक है। शकुन्तला को पाकर जिस राजा ने एक दिन अपने को स्वर्गसुख का अधिकारी समझा था, वही आज अँगूठी पाने से अपने को नरक का अधिकारी समझ रहे हैं। उनके मन में मर्मान्तिक-वेदना होने लगी। वे मन ही मन सोचने लगे, पत्नी का वियोग बहुतों को होता है, किन्तु कब किसने अपनी धर्मपत्नी को इस तरह त्याग दिया? कहाँ वह हिमालय-स्थित तपोवन, और कहाँ हस्तिनापुर! गर्भवती पतिव्रता इतनी दूर का कठिन मार्ग पैदल चल कर आश्रय के लिए मेरे पास आई, किन्तु आश्रय देना तो दूर रहा, मैंने एक मीठी बात से भी उसकी ख़ातिर न की, बल्कि मर्मभेदी व्यङ्ग वचन से उसके हृदय को वेधित कर उसे विदा कर दिया। इस अपराध का क्या प्रतीकार है? शकुन्तला ने मेरे समझाने की कितनी ही चेष्टायें कीं, पर मेरी बुद्धि क्यों ऐसी भ्रष्ट हो गई जो मैं किसी तरह नहीं समझ सका। मैं इतने दिन से राजकाज कर रहा हूँ,

अभियुक्तजनों के गुण-दोष के जानने का अभ्यास रखता हुआ भी, मैं न जान सका कि शकुन्तला अपराधिनी है या निरपराधा! जो वैसी भोली भाली, जिसका वैसा स्नेह और कारुण्य-पूर्ण मुखमण्डल है. वह क्या कभी मिथ्या कह सकती है? दूसरे जिन्होंने तपश्चर्या ही में अपनी सारी उम्र बिताई, जो जन्म ही के साधु और ब्रह्मनिष्ठ हैं, उन महर्षि कण्व ने अपनी कन्या को विवाहिता जान कर ही मेरे पास भेजा, क्या इस पर मैंने एक बार भी विचार न किया? इस घोर पाप का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

राजा ने मन में कहा—यदि अब शकुन्तला को कहीं देख पाऊँ तो अपने आँसुओं से उसके चरण पखार कर इस पाप का प्रायश्चित्त करूँ। पर वह है कहाँ? क्या इस जन्म में फिर उसका दर्शन होगा? पुरोहित ने कहा था, वह इस संसार से अन्तर्धान होगई। शकुन्तला पतिव्रता थी। इसी से वह स्वर्गलोक को गई। मैं पत्नी-द्रोही पापात्मा हूँ। इसी से नरक-यन्त्रणा भोगने के लिए मर्त्यलोक में रह गया।

राजा यह सोचकर दुखी थे कि उनके पाप का प्रायश्चित्त इस शरीर से होना कठिन है। पर यह बात न हुई। अँगूठी हाथ में आते ही उनका प्रायश्चित्त प्रारम्भ हुआ। शकुन्तला का स्मरण उनके साथ बिच्छू का काम करने लगा। शकुन्तला के वे आँसू भरे नयन, उसकी वह संकोच-भरी कोमल प्रार्थना, उसका वह अलौकिक रूप-माधुर्य सोते जागते आठों पहर उनके मन को मथित करने लगा। उसकी वह भोली सूरत उन्हें पल भर भी न बिसरती थी। शकुन्तला की चिन्ता ने दुष्यन्त के हृदय को खोखला कर दिया। वे जलहीन मीन की भाँति दिन रात छटपटाने लगे।

नरकयन्त्रणा किसे कहते हैं? इसी अवस्था को। शान्ति-रहित अवस्था में रहने ही का नाम नरक है। जिस पहाड़ के भीतर आग जलती है उसका बाहरी हिस्सा कुछ दिन हरियालियों से हरा भरा सा देख पड़ता है, किन्तु उसके भीतर जो तीव्र ज्वाला से सदा दग्ध होता है वह कोई नहीं जानता। वह किसी को नहीं सूझता। दुष्यन्त की भी यही अवस्था थी। राजकार्य में, सन्धि-विग्रह में, नित्य-कृत्य में लोग देखते थे कि दुष्यन्त में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। किन्तु यदि कोई उनके हृदय का मध्य भाग देखता तो जानता, वहाँ कैसी तीव्र ज्वाला दिन रात धधकती है। वही तो नरकाग्नि है। उसी के द्वारा तो मनुष्य के पाप का प्रायश्चित्त होता है। इस चिरकालिक प्रायश्चित्त से शकुन्तला के सम्बन्ध में दुष्यन्त के प्रेम का जो अंश सकाम था वह दग्ध हो गया, किन्तु जो निष्काम था वह बच रहा। मूर्तिमती शकुन्तला के बदले आत्ममयी शकुन्तला ने उनके हृदय पर अधिकार किया। वे शकुन्तला के पुनर्वार दर्शन की आशा त्याग कर उसके गुणगान से, उसके चित्रनिर्माण से और उसके मानसिक ध्यान से ही शान्ति लाभ की चेष्टा करने लगे।

इसी समय देवराज इन्द्र ने दैत्यगणों से सताये जाकर शत्रु को दबाने के लिए इन्हें स्वर्ग में बुलाया। ये युद्ध में जयलाभ करके, इन्द्र से सम्मानित होकर, उनके रथ पर सवार हो मातलि के साथ अपनी राजधानी को लौटे आ रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक अपूर्व शोभासम्पन्न सोने के सदृश आकार का सुन्दर पहाड़ देखा। उस पहाड़ के सम्बन्ध में पूछने पर इन्द्र के सारथि ने कहा—'इस पहाड़ का नाम हेमकूट है। देवताओं के पति कश्यप और अदिति इसी पर्वत पर आश्रम बना कर तपस्या करते हैं।

राजा ने कहा—जब इस आश्रम के इतना समीप होकर जा रहे हैं तब उन दोनों के विना दर्शन किये जाना कदापि उचित नहीं। चलिए, उन्हें प्रणाम तो कर लें।

मातलि—अच्छी बात है। चलिए।

दोनों हेमकूट पहाड़ पर उतरे। मातलि कश्यप के पास राजा के आने की खबर देने गये। राजा तपोवन देखने की इच्छा से इधर-उधर घूमने लगे। कण्व के आश्रम में प्रवेश के समय जैसे एक वार उनकी दहनी भुजा फड़क उठी थी, वैसे ही अब भी एक बार फड़क उठी। राजा ने अपनी बाँह को धिक्कार देकर कहा—"क्यों वृथा फड़क रही है? अपने सुख को आप ही छोड़ देने से दुःख के सिवा और क्या मिल सकता है?" उन्हें कण्व का आश्रम स्मरण हो आया। इस समय महर्षि कश्यप का आश्रम देख कर वे और भी विमुग्ध हुए। क्या ही प्रशान्त और पवित्र भाव सर्वत्र छाया है। जिन पदार्थों की कामना से साधारण तपस्विगण अन्य स्थान में तपस्या करते हैं, यहाँ वे पदार्थ पाकर भी ऋषिगण कठोर तपस्या में लगे थे। अभीष्टदायक कल्पवृक्ष के वन में निवास करके भी वे निष्काम होकर केवल वायुसेवन से जीवन-निर्वाह कर रहे थे। स्वर्णकमल के पराग से सुगन्धित जल में नहा कर, स्फटिक-शिला पर बैठ कर और दिव्याङ्गनाओं के साथ रह कर भी वे महात्मा निर्विकार चित्त से तपस्या कर रहे थे। मातलि ने सत्य ही कहा था—जो लोग जैसे मनस्वी होते हैं, उनका आशय भी वैसा ही ऊँचा होता है।

राजा आश्रम देख रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी को कहते सुना—"बच्चा! इतना चञ्चल न होना।" राजा ने कुतूहल-वश उस ओर दृष्टि फेर कर देखा—एक छोटा सा बालक एक

सिंह के बच्चे को बलपूर्वक घसीटे लिये आ रहा है, और दो तपस्विनियाँ उसके हाथ से सिंहशावक को छुड़ाने की चेष्टा कर रही हैं। बालक जैसे देखने में सुन्दर है वैसे ही बलवान् और तेजस्वी भी है।

उसका सोने सा गोरा रङ्ग, बड़ी बड़ी आँखें, भौंरे से काले घुँघराले बाल, पुष्ट शरीर देख कर राजा मोहित हो गये। उनकी इच्छा हुई, एक बार उसे गोद में उठा लें। किन्तु अपरिचित बालक के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं, यही सोचकर विरत हुए। उसी समय बालक ने सिंह के बच्चे का मुँह पकड़ कर कहा—"तू एक बार मुँह बा, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।" तपस्विनियों ने देखा, लड़का सिंह के बच्चे पर धीरे धीरे ज़्यादा बल प्रकाश कर रहा है। उन्होंने उसके हाथ से बच्चे को छुड़ा देने की बार बार चेष्टा की परन्तु वे किसी तरह कृतकार्य न हुईं। तब एक ने दूसरी से कहा—"यह सहज ही न मानेगा। आश्रम से इसके लिए एक खिलौना ले आओ। उसमें भूलकर यह आप ही इसे छोड़ देगा।" यह सुनकर वह खिलौना लाने गई, इधर बालक सिंह के बच्चे को और भी अधिक सताने लगा। उसे देखकर एक तपस्विनी जो उसके पास थी, बोली, "यहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इस दुर्विनीत बालक के हाथ से सिंह के छौने को छुड़ा दे।" राजा ने यह उचित अवसर समझ, आगे बढ़कर बालक के हाथ से सिंह के बच्चे को छुड़ा दिया। बालक के स्पर्श से उनका सम्पूर्ण शरीर आनन्द से कण्टकित हुआ। वे हृदय के आवेश को न रोक सके। झट उस लड़के को गोद में उठा लिया। उनका सर्वाङ्ग मानो अमृत से संसिक्त हुआ। उन्होंने सोचा, "यदि दूसरे की सन्तान

को गोद में बिठाने से इतनी तृप्ति होती है, तो न मालूम अपनी सन्तान को गोद में बिठाने से कितनी तृप्ति होती होगी? हाय! यदि मैं अपनी प्रियतमा का त्याग न करता, तो मैं भी ऐसी सन्तान पाकर कृतार्थ होता।" बालक इतनी देर तक जैसी उद्दण्डता दिखा रहा था, राजा के पास वह न दिखा, स्थिर होकर उनके मुँह की ओर देखने लगा। राजा ने उससे कहा—देखो ऋषिकुमार! यह उपद्रव करने का स्थान नहीं है। यह शान्त तपोवन है, यहाँ ऐसा उद्दण्ड न होना चाहिए।

तपस्विनी बोली—महाशय। यह ऋषिकुमार नहीं है, क्षत्रियकुमार है।

क्षत्रियकुमार सुनकर राजा को कुतूहल हुआ।

उन्होंने पूछा—देवि! क्या कहा? यह क्षत्रियकुमार है? किस वंश में इसका जन्म हुआ है।

तपस्विनी—पुरुवंश में।

राजा चकित होकर सोचने लगे, तो क्या मेरी आशा एकबार ही अमूलक नहीं है? हो सकता है, पुरुवंशी कितने ही राजा बुढ़ापे में वानप्रस्थ आश्रम धारण करते हैं। यह उन्हीं में किसी का अपत्य होगा। अच्छा, और भी पूछता हूँ, "तपस्विनीजी! यह आश्रम देवताओं के रहने का है, मनुष्य होकर यह बालक यहाँ कैसे आया?"

तपस्विनी—इसकी माता एक अप्सरा की कन्या है। उसी सम्बन्ध से उसने यहाँ आकर इसे प्रसव किया।

राजा का हृदय और भी आशान्वित हुआ। उन्होंने पूछा, इसके पिता का नाम क्या है? तपस्विनी मुँह फेर कर बोली—"उस पत्नी-त्यागकर्ता पातकी का कौन नाम ले?"

राजा—"सब बातें तो मेरे साथ घटती हैं। किन्तु क्या विधाता की इतनी दया होगी जो मेरी आशा फलवती होगी। नहीं! मैं पापात्मा हूँ इसी से इस मृगतृष्णा में पड़कर मुग्ध हो रहा हूँ।" इसी समय दूसरी तपस्विनी ने आश्रम से एक मिट्टी का सुग्गा लाकर बालक से कहा—"सर्वदमन! देखो, कैसा शकुन्त लाई हूँ।" शकुन्त लाई हूँ, इस वाक्य में शकुन्तला शब्द उसके मुँह से सुन कर बालक ने व्यग्र होकर कहा—मेरी माँ कहाँ है?

तपस्विनी ने कहा—इसकी माता का नाम शकुन्तला है, "शकुन्त लाई हूँ" वाक्य में माता का नाम उच्चारित सुन कर उसकी खोज कर रहा है।

राजा ने मन में कहा—अब तुम आशा कर सकते हो इतना सादृश्य विफल नहीं हो सकता। किन्तु यह बालक शकुन्तला का है, माना, पर वह है कहाँ? क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि मैं फिर शकुन्तला के दर्शन से कृतार्थ होऊँगा?

इसी समय पहली तपस्विनी ने देखा कि सिंहशावक के साथ खेलते समय बालक की बाँह से यन्त्र (तावीज़) खुल कर गिर पड़ा है। उसने लड़के से पूछा—सर्वदमन! तुम्हारा तावीज़ क्या हुआ?

राजा उसे समीप ही में पड़ा देख उठाने चले। यह देख तपस्विनी ने बड़ी घबराहट के साथ उन्हें पुकार कर कहा—उसे मत छूओ, मत छूओ।

किन्तु उनके मना कर देने के पूर्व ही राजा ने उस तावीज़ को उठा लिया और अचम्भे के साथ तपस्विनी से पूछा—आप तावीज़ उठाने से मुझे क्यों रोकती थीं?

उन्होंने कहा—केवल माता ही पिता इस यन्त्र के छूने के

अधिकारी हैं। दूसरा कोई इसे छू ले तो यह उसे सर्प बन कर डँस लेता है।

राजा—आपने कभी इस तरह की घटना होते अपनी आँख से देखी है?

तपस्विनी—एक बार नहीं, कई बार। यह सुनकर राजा ने दीर्घ निःश्वास लिया।

राजा की भावभङ्गी और उनकी आकृति से सर्वदमन की आकृति मिलती हुई देखकर ऋषिपत्नी पहले ही से नाना प्रकार की कल्पना कर रही थीं। इस समय उन्हें तावीज़ उठाते देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे शकुन्तला से यह वृत्तान्त कहने के लिए आश्रम की ओर दौड़ीं। सर्वदमन राजा की गोद में था। ऋषिपत्नियों के चले जाने पर उसने राजा से कहा—मुझे छोड़ दो, मैं माँ के पास जाऊँगा।

राजा—बेटे, मेरे साथ चलो।

बालक—मैं दुष्यन्त का बेटा हूँ। तुम्हारा नहीं।

सुन कर राजा को हँसी आई। इस दुःख में भी उन्हें सुख का अनुभव हुआ।

इसी समय तपस्विनी के मुँह से सब वृत्तान्त सुन कर शकुन्तला वहाँ आई। शकुन्तला जब दुष्यन्त से तिरस्कृत हुई थी तब उसकी माँ मेनका उसे अलक्षितरूप से यहाँ ले आई थी। तब से वह यहाँ रह कर कठिन तपस्या से समय बिताने लगी। राजा ने दूर से शकुन्तला को देखा। क्या यह वही शकुन्तला है जो एक दिन प्रातःकालीन खिली हुई कमलिनी की भाँति कण्व के आश्रम-रूपी सरोवर को सुशोभित कर रही थी? जिसके मुखकमल के

सौरभ से आकृष्ट होकर भ्रमर फूले हुए लतापुष्प को छोड़ कर उसके मुँह पर बैठने के लिए लालायित हो रहा था? जिसके यौवन की शोभा देख कर वसन्त ऋतु की फूली हुई फुलवाड़ी संकुचित होती थी? दुष्यन्त ने जिसके दर्शन कर अपने विशेष पुण्य का उदय समझा था? क्या यह वही शकुन्तला है? शकुन्तला का चेहरा उदास है, उसके होंठ सूखे हैं, कपोल पीले हो गये हैं, आँखें भीतर को धँस गई हैं। सिर के बाल रूखे हैं, जिन्हें समेट कर वह जटा की भाँति बाँधे हुए है। गेरुआ वसन पहने है। पति के विरह से शरीर सूख कर काँटा हो गया है। किन्तु तपश्चर्या से अब भी उसके शरीर की कान्ति उज्ज्वल है। दुष्यन्त उस समय रूपयौवनयुक्त उपभोग के योग्य शकुन्तला को नहीं खोजते थे, वे तपःक्षीणकलेवरा शकुन्तला की खोज कर रहे थे। इसलिए वे प्रथम दर्शन के दिन की तरह अतृप्त नयन से शकुन्तला को देखने लगे। दुष्यन्त के स्वरूप में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। दिन रात सोच करते करते उनकी कान्ति मलिन और शरीर खिन्न हो गया था। दोनों ही परस्पर एक दूसरे को देख कर व्यथित और विस्मित हुए। उन दोनों के मन का भाव उस समय कैसा था, यह कौन बखान सकता है? दुष्यन्त ने शकुन्तला की ओर देखा, वह अब भी वही सरलता की प्रतिमूर्ति शकुन्तला है। उसके चेहरे पर ज़रा भी रोष या अभिमान का चिह्न नहीं है। यदि कुछ चिह्न है, तो मर्मान्तिक वेदना का। शकुन्तला की प्रसन्नता भरी सीधी चितवन ने राजा के लाज, भय और क्षोभ को दूर कर दिया। वे उसके पैरों पर गिर कर बोले—"प्रियतमे! मैं मोहग्रस्त हो गया था। मेरी बुद्धि मारी गई थी। नहीं तो मैं उस तरह आत्म-विस्मृत क्यों होता? तुम मेरा अपराध क्षमा करो।

पतिव्रता स्त्री का क्या कभी पति के ऊपर अभिमान स्थिर रह सकता है ?" दुष्यन्त की बात सुनते ही शकुन्तला के सब क्षोभ दूर हुए। उसने उनका हाथ पकड़ कर कहा—आर्य ! आपका कोई दोष नहीं। मेरे ही पूर्वजन्म के पाप का फल था। नहीं तो आपके सदृश महानुभाव मुझे कभी भूल सकते थे ?

इसी समय सर्वदमन ने अपनी माँ से पूछा—ये कौन हैं ?

शकुन्तला—मैं क्या बताऊँ ? अपने भाग्य से पूछो।

राजा दुष्यन्त के हाथ में वह स्मारक अँगूठी थी। शकुन्तला ने देख कर पूछा—नाथ ! क्या यह वही अँगूठी है ?

राजा—हाँ वही है। यह अँगूठी तुम ले लो। देखना, जिसमें फिर कभी यह तुम्हारे हाथ से जुदा न हो।

शकुन्तला—मैं अब इसका विश्वास नहीं कर सकती। इसी ने मेरा सर्वनाश किया। यह आप ही के हाथ में रहे।

इसी समय मातलि वहाँ आया। उसने राजा दुष्यन्त और शकुन्तला को एक साथ देख कर कहा—महाराज ! आपका भाग्य प्रशंसनीय है। चिरकाल की खोई हुई सहधर्मिणी अनायास ही आज आपको यहाँ मिल गई। भगवान् कश्यप और अदिति दोनों आपके आने का संवाद सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। वे आपसे मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलिए, उनके दर्शन से कृतार्थ हूजिए।

दुष्यन्त ने शकुन्तला से कहा—"प्रिये ! चलो। हम तुम दोनों साथ मिल कर भगवती अदिति और भगवान् कश्यप का दर्शन कर आवें।" दुष्यन्त की सम्मति से सबके सब कश्यप मुनि के आश्रम की ओर विदा हुए। सर्वदमन माता की उँगली पकड़

कर साथ साथ चला । महर्षि कश्यप एक कल्पवृक्ष के नीचे स्फटिक-शिला पर बैठे थे । उनके वामभाग में अदिति थीं । बुढ़ापे के कारण दोनों के बाल सफ़ेद थे । शरीर का चमड़ा सिकुड़ गया था । तो भी उनके मुखमण्डल पर पुण्य की ज्योति छाई थी । महर्षि सहधर्मिणी को पातिव्रत्यधर्म का उपदेश दे रहे थे । दुष्यन्त और शकुन्तला ने एक साथ ऋषि-दम्पती को प्रणाम किया । उन्होंने प्रीतिपूर्वक आशीर्वाद दिया । परस्पर कुशल-प्रश्न के अनन्तर राजा ने कश्यप मुनि से कहा—भगवन् ! मैं शकुन्तला का तिरस्कार कर आपके और पिता कण्व के निकट परम अपराधी हूँ । मैं नहीं कह सकता, किसलिए मेरा वैसा मतिभ्रम हुआ । मेरे अपराध क्षमा करें ।

कश्यप ने कहा—वत्स ! तुम्हारा तिलमात्र भी इसमें अपराध नहीं है । किसलिए शकुन्तला का स्मरण एक-दम तुम्हारे हृदय से जाता रहा, यह तुम या शकुन्तला, दोनों में कोई नहीं जानता । वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो—

शकुन्तला और राजा बड़े ध्यान से कश्यप मुनि की बात सुनने लगे । महर्षि ने राजा से कहा—वत्स ! जब तुम तपोवन से बिदा हो हस्तिनापुर को लौट आये तब शकुन्तला तुम्हारी चिन्ता में निमग्न हो सब कार्य में असावधान रहने लगी । कण्व अतिथि-सत्कार का भार उसी को दे गये थे । किन्तु शकुन्तला का उस ओर उतना ध्यान न रहा । उसी अवस्था में एक दिन क्रोधशील दुर्वासा उसके आश्रम में आये । पर उसने असावधानी के कारण उनका उचित सत्कार न किया । इससे क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने उसे यही शाप दिया कि "जिसकी चिन्ता में निमग्न होकर तुमने मेरा अपमान किया है, वह तुम्हें एक-दम भूल जायगा । स्मरण

करा देने पर भी उसे तुम्हारा स्मरण न होगा।" शकुन्तला तुम्हारे ध्यान में इस तरह डूबी थी कि उसने यह बात न सुनी। किन्तु उसकी दोनों सखियों ने दुर्वासा का यह शाप सुन कर उनकी बहुत बिनती की। उन दोनों के विनयवाक्य से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने अन्त में कहा—"कोई स्मारक चिह्न दिखलाने से पूर्व वृत्तान्त स्मरण हो आवेगा।"

शकुन्तला के प्रति दुर्वासा का शाप ही तुम्हारे स्मृतिभ्रंश का कारण हुआ। इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है।

यह सुन कर शकुन्तला और राजा के हृदय से मानो पहाड़ का बोझ उतर गया। दोनों लम्बी साँस लेकर परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। दोनों की आँखों में आँसू भर आये।

महर्षि कश्यप ने कहा—बेटी! इस संसार में हम लोगों के बहुतेरे कर्तव्य हैं। किसी किसी समय उन कर्तव्यों में परस्पर विरोध उत्पन्न होता है। कर्तव्यों की एकता में सुख है और विरोध में दुःख। तुम जो पतिचिन्ता में निमग्न होकर आश्रमी का मुख्य धर्म अतिथि-सेवा करना भूल गई थीं, उसी से तुम दोनों ने इतने क्लेश सहे। अब तुम्हारे अपराध की शान्ति हो गई। जाओ, तुम दोनों अब सुखपूर्वक धर्माचरण करके समय बिताओ। मैं कण्व के पास यह शुभसंवाद भेज देता हूँ।

अदिति ने शकुन्तला को आशीर्वाद देकर कहा—बेटी! तुम्हें क्या उपदेश दूँ? तुम स्वयं स्त्रीधर्म जानती हो। तुम्हारे स्वामी इन्द्र-सदृश, पुत्र जयन्त के तुल्य और तुम शची के समान हो।

• शकुन्तला और दुष्यन्त ऋषि-दम्पती को प्रणाम करके सर्व-

दमन को साथ ले इन्द्र के रथ पर सवार हो हस्तिनापुर आये। वहाँ दोनों नित्य-नैमित्तिक धर्म-कर्म करते हुए सुखपूर्वक समय बिताने लगे। उनका पुत्र सर्वदमन पश्चात् भरत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। समुद्र से हिमालय पर्यन्त समस्त आर्यभूमि इसी के नामानुसार अब तक भारतवर्ष के नाम से विख्यात है।

इति